प्रातःस्मरणीय पूज्य
संत श्री आशारामजी बापू के सत्संग प्रवचनों व
सत्साहित्य से संकलित

प्रभु-रसमय जीवन

इस पुस्तक में हैः घर परिवार की सुख शांति हेतु चिंतनीयलेख तथा प्रेरक प्रसंग, जिनमें दिया गया है कि घर का मुखिया पूरे कुटुम्ब को सन्मार्ग पर कैसे मोड़े, माता-पिता अपनी संतानों को कैसे पाले पोसें, भाई-भाई के बीच दरार नहीं लेकिन आत्मीयता कैसे रहे, पति-पत्नी शांतिपूर्वक आदर्श दाम्पत्य जीवन कैसे बितायें, सासु-बहू परस्पर की कटुता मिटाकर परिवार में मधुरता कैसे बढ़ायें ?

महिला उत्थान ट्रस्ट

संत श्री आशारामजी आश्रम

संत श्री आशारामजी बापू आश्रम मार्ग, अहमदाबाद-380005

फोनः 079-27505010-11

आश्रम रोड, जहाँगीर पुरा, सूरत 395005

फोनः 0261- 2772201-2

वन्दे मातरम् रोड, रवीन्द्र रंगशाला के सामने,

नई दिल्ली-60

फोनः 011-25729338, 25764161

पेरूबाग, गोरेगाँव (पूर्व)

मुंबई-400063

फोनः 022-26864143-44

email: ashramindia@ashram.org website: http://www.ashram.org

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निवेदन...

गृहस्थाश्रमरूपी रथ के दो पहिये हैं - पति और पत्नी। अगर एक भी पहिये में कमजोरी रहती है तो रथ की गति अवरूद्ध होती है। संयम व मर्यादा के पथ पर चलता गृहस्थ-जीवनरूपी रथ शीघ्र ही अपने मोक्षरूपी गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देता है।

परस्पर प्रेम रहने से ही परिवार में सुख-शांति रहती है और प्रेम रहता है स्वार्थ तथा अभिमान के त्याग से। दूसरे का भला कैसे हो, उनका आदर-सम्मान कैसे बना रहे, दूसरे को

धर्मानुकूल सुख कैसे मिले ? - इसको महत्ता देकर आचरण किया जाय तो कुटुम्ब में परस्पर एकता, सौहार्द व सुख-शांति बने रहते हैं, सभी प्रसन्न रहते हैं।

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता न दुर्भाषिणी,
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मृष्टान्नपानं गृहे,
साधोः संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।।

'घर में सब सुखी हैं, पुत्र बुद्धिमान हैं, पत्नी मधुरभाषिणी है, अच्छे मित्र हैं, अच्छा धन है, अपनी पत्नी का ही संग है, नौकर आज्ञाकारी हैं, हर रोज अतिथि-सत्कार व भगवान तथा गुरुजनों का पूजन होता है, पवित्र एवं सुंदर खान-पान है और नित्य ही संतों का संग किया जाता है - ऐसा जो गृहस्थाश्रम है वह धन्य है !'

इस पुस्तक में सुख-शांतिमय गृहस्थसंबंधी आवश्यक बातों की जानकारी तथा गृहस्थियों को अपनी विविध समस्याओं का समाधान मिल पाये ऐसे जीवनोपयोगी प्रसंग दिये गये हैं। पूज्य बापू जी के सत्संग व अन्य सत्शास्त्रों से संकलित यह अमृत-कलश हर गृहस्थ तक पहुँचे ऐसी सदभावना के साथ...

श्री योग वेदान्त सेवा समिति, अहमादाबाद आश्रम।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नारियों का कितना महान योगदान !

पूज्य बापू जी

मेरे गुरुजी की वृद्ध दादी माँ पढ़ी-लिखी नहीं थीं। सत्संग सुनकर उन्हीं विचारों में बस शांत हो जाती थीं। केवल सत्संग में सुनकर 'मैं आत्मा हूँ' यह पक्का कर लिया। मेरे गुरु जी भगवान लीलारामजी तब बालक थे। उनको गोद में लेकर वे बोलतीं- "अरे लीलाराम ! बहुएँ और दूसरी माइयाँ मजाक उड़ाती हैं कि बूढ़ी 'खें-खें कर रही है। मैं बूढ़ी नहीं हूँ और 'खें-खें' नहीं करती हूँ। यह तो शरीर करता है। मैं तो चैतन्य आत्मा हूँ और परमात्मा की सब लीला है। 'खें-खें भी वही है, कहने वाला भी वही है और सुनने वाला भी वही है। सबमें वही मेरा प्यारा लाल !"

उन्होंने बचपन में लीलारामजी में ऐसे संस्कार डाल दिये कि 20 साल की उम्र में तो लीलारामजी साक्षात्कारी हो गये ! अनपढ़ वृद्ध दादी माँ का यह कितना सत्संग-प्रभाव कि आज करोड़ों-करोड़ों लोग फायदा ले रहे हैं !

मेरी माँ ने मुझे ध्यान करने हेतु उत्साहित किया और लीलारामजी की दादी जी ने उनको आत्मज्ञान के संस्कार दिये - इन दोनों महिलाओं का सहयोग आशाराम और लीलाशाहजी बापू के

द्वारा आत्मज्ञान, आत्मसुख का कितना-कितना फैलाव कर रहा है, देख लो ! महिलाओं का, नारियों का कितना योगदान है नर-नारियों को नारायण-नारायणी रूप बनाने में !

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गृहस्थाश्रम में सफलता

पूज्य संत श्री आशारामजी के सत्संग-प्रवचन से

ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास - इन सब आश्रमों का आधार गृहस्थाश्रम ही है।

गृहस्थ जीवन का मुख्य उद्देश्य है अपनी वासनाओं पर संयम रखना, एक-दूसरे की वासना को नियंत्रित कर त्याग और प्रेम उभारना तथा परस्पर जीवनसाथी बनकर एक दूसरे के जीवन को उन्नत करना।

कामनापूर्ति में फँसकर मनुष्य का जीवन निकम्मा न हो जाय, बल्कि कामनापूर्ति की सीमा रहे इसलिए सनातन धर्म में शादी की व्यवस्था है। पति-पत्नी एक दूसरे की रक्षा करें, एक दूसरे के जीवन में निखार लाने की चेष्टा करें, एक दूसरे की कमजोरी को दूर करने का यत्न करें। भारतीय संस्कृति में इसी व्यवस्था का नाम शादी है।

शास्त्र कहते हैं कि जब पति-पत्नी का नाता हो जाता है तो दोनों को एक-दूसरे की उन्नति का सोचना चाहिए। पति या पत्नी यदि तन, मन अथवा बुद्धि से कमजोर है तो एक दूसरे का सहयोग करके एक-दूसरे की कमी को दूर करना चाहिए। एक दूसरे की योग्यता उभारने का यत्न करना चाहिए।

ऐसा नहीं कि पत्नी पति को टोकती रहे या पति पत्नी को डाँटता रहे। इससे कमियाँ निकलने की अपेक्षा बढ़ती चली जायेंगी। पति पत्नी में से कोई यदि गलती करता है तो उस गलती को निकालने में कहीं गलतियों का भंडार न पैदा हो जाय इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

एक-दूसरे को बाहर से कुछ कहना भी पड़े तो कह दें किंतु दोनों का अंतःकरण सहानुभूति की भावना से भरा हो। ऐसा नहीं कि एक-दूसरे की कमियाँ ढूँढते रहें और अपनी शेखी बघारते रहें। एक-दूसरे को कमियों के कारण टोकते रहते हैं और एक-दूसरे की कमियाँ खटकती रहती हैं तो तलाक देने तक की स्थिति आ जाती है।

मनुष्य का स्वभाव है कि जिसके प्रति उसकी द्वेषबुद्धि होती है उसके दोष ही दिखते हैं और जिसके प्रति रागबुद्धि होती है उसके गुण ही दिखते हैं। किसी के दोष निकालने में व्यक्ति दंड देने की अपेक्षा प्रेम से ज्यादा सफल होते हैं।

बाल गंगाधर तिलक ने अपनी अनपढ़ पत्नी को पढ़ा-लिखाकर काफी ऊँचा उठा दिया था। लोगों ने कहाः "आपने तो कमाल कर दिया !" तिलक ने जवाब दिया कि "कमाल की क्या बात है ? अपने जीवनसाथी को ऊँचा उठाना तो हमारा कर्तव्य है। एक पहिये से गाड़ी ठीक नहीं चलती, दूसरे पहिये को भी ठीक करना पड़ता है।"

पति-पत्नी, माता-पिता पुत्र एक दूसरे को दबोचने की कोशिश न करें। मैं तो यह कहूँगा कि शत्रु को भी दबोचने की कोशिश न करें, उससे सावधान रहें। उसको दबोचने की कोशिश से बड़ी हानि होती है। यदि आपके मन में शत्रु के प्रति भी हित की भावना है तो शत्रु का शत्रुपन टिक नहीं सकता।

श्रीरामजी अंगद से कहते हैं तुम रावण के पास जाओ और उसको समझाने की कोशिश करो। सीता को लाने का काम तो हमारा है किंतु हित रावण का होना चाहिए।

काजु हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई।।
श्रीरामचरितमानस, लं.का. 16.4

पति जो कमाता है उस पर केवल पत्नी का ही हक नहीं है। परिवार के सभी सदस्यों की योग्यता बढ़ाने के लिए उसका उपयोग होना चाहिए वरना अपना पेट तो पशु भी भर लेते हैं। अपने बच्चों की चोंच में तो पक्षी भी दाना रख देते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री केवल भोग्या है, उसको मुक्ति का अधिकार नहीं है। किंतु भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह स्त्री को भी मुक्ति की अधिकारिणी मानती है। सावित्री, मदालसा, गार्गी आदि ने परमात्मा का अनुभव किया और गार्गी ने तो जनक के दरबार में बैठे हुए पंडितों को भी अपनी आत्मनिष्ठा के प्रभाव से चकित कर दिया ! ऐसी अनेक महान नारियाँ भारतीय संस्कृति में ही हुई हैं।

स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी है। उसमें भी वही चेतना है जो पुरुष में है। गृहस्थ-जीवन स्त्री के बिना अधूरा है। परब्रह्म परमात्मा भी कहते हैं कि 'अकेले चौरस कैसे खेलें ? अकेले किससे बात करें ? दूसरा होगा तभी तो बात करेंगे !'
परब्रह्म परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति में ही सृष्टि को उत्पन्न करने की शक्ति है। जैसे पुरुष की शक्ति उससे अलग नहीं, ऐसे ही परब्रह्म परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति उससे अलग नहीं। जैसे पानी और उसकी तरंग अलग दिखते हुए भी एक दूसरे से अलग नहीं, वैसे ही ईश्वर की व्यापक शक्ति माया, ईश्वर से अलग दिखते हुए भी उससे अलग नहीं।

एक ही ईश्वरीय सत्ता के दो रूप हैं- एक रूप है त्याग और अनुशासन तो दूसरा है तप और प्रेम। जैसेः शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण-राधा।
स्त्री-पुरुष के सांसारिक व्यवहार में पुरुष अपना तेज स्त्री को देता है। स्त्री उसे नौ महीने तक गर्भ में संभालती है तथा अपने तप और प्रेम से बालक के रूप में बदलती है। अगर स्त्री में तप और प्रेम नहीं होता तो हम लोग यहाँ पर नहीं होते।

सनातन धर्म कहता है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

गृहस्थ जीवन बुरा नहीं है, बुरी है अंधी आसक्ति, बुरा है अंधा आवेश, बुरा है अंधा चटोरापन। मनुष्य अपने चारों पुरुषार्थों को साधकर सच्चिदानंद के पूर्ण आनंद को पा सके - ऐसी व्यवस्था सनातन संस्कृति में है।

जीवन केवल कमाने-खाने और मर जाने के लिए नहीं है। पशुओं की तरह जीने के लिए जीवन नहीं है। जीवन आनंद उल्लास और आत्म परमात्म सुख की अभिव्यक्ति के लिए है।

हमें कोई कहता है कि 'यह मेरी मिसेस (पत्नी) है। ' तो हम कहते हैं- 'असम्भव'। फिर उसकी पत्नी कहती है के 'ये मेरे मिस्टर (पति) हैं। ' तो हम कहते हैं- 'असम्भव'। यह सुनकर दोनों हक्के बक्के रह जाते हैं ! फिर मैं धीरे-से कहता हूँ कि 'विदेशों में जो शादी होती है उसमें काम की प्रधानता होती है और अपने देश में धर्म की प्रधानता होती है। मिस्टर और मिसेस तो भोगी लोग कहते हैं, धर्म-प्रधान जीवन जीने वाले भारतवासी को यह शोभा नहीं देता। इसलिये यहाँ मिस्टर और मिसेस नहीं, धर्मपत्नी (अर्धांगिनी) और पतिदेव कहते हैं।'

शुभ कर्म में अपनी ताकत होती है, बड़ा सामर्थ्य होता है। आप गृहस्थाश्रम में रहकर शुभ कर्म कर सकते हैं। शास्त्रानुकूल जीवन जीयें, संयम-नियम से रहें, परिवार का उचित पालन-पोषण करें, अपने बालकों में शुभ संस्कारों का सिंचन करें, माता-पिता, गुरु, अतिथि-अभ्यागत, साधु-संतों की सेवा करें, सत्संग-स्वाध्याय, जप-ध्यान, व्रत-उपवास आदि करें तो आप गृहस्थाश्रम में रहकर भी मुक्तिमार्ग के अधिकारी बन सकते हैं।

यदि गृहस्थाश्रम को निभाने की कला आ जाय तो गृहस्थ-जीवन धन्य हो जाता है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं - **धन्यो गृहस्थाश्रम !**

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गृहस्थी का अमृत

बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

'स्कन्द पुराण' में आया है कि गृहस्थ के घर नौ प्रकार का अमृत सदैव रहना चाहिए, इससे वह सुखी रहता है। ये सभी बिना पैसे के अमृत हैं।

एक तो आपके घर कोई भी आ जाय तो उससे मीठे वचन बोलें। दूसरा - सौम्य दृष्टि से उसको निहारें। चाहे वह कितना भी बदमाश हो, क्रूर हो, कैसा भी हो परंतु आपके द्वार आया है, इस समय वह अतिथिदेव है। अतिथि में देवत्व देखोगे तो आपका देवत्व जाग्रत होगा।

तीसरा - सौम्य मुख रखें। उसके साथ सौम्य-सुखद व्यवहार करें।

चौथा-अतिथि के आने पर आप सौम्य मन बना लीजिये।

पाँचवाँ - आप खड़े होकर उसके प्रति आदर का भाव व्यक्त करें। भले वह आपको गाली देता है, आपका कट्टर दुश्मन है किंतु आपने उसको मान दे दिया, खड़े होकर सम्मान दे दिया तो आधा तो आपने उसको जीत ही लिया और यदि आपने उसको चुभने वाली बात कह के या अपमानित कर के रवाना कर दिया तो आपने अपने लिए अपमान का द्वार चौड़ा कर दिया।

छठा-स्वागत के दो मीठे वचन बोलिये और जलपान से उसका स्वागत कीजिये। सातवाँ - स्नेहपूर्वक वार्तालाप करें। जैसे -प्रेम से उसको पूछें कि कैसे आये ? आज तो बहुत कृपा हुई...

आदि-आदि। आठवाँ - आप उसके पास थोड़ी देर बैठें। नौवाँ - उसको विदा करने के लिए उसके साथ चार कदम चल पड़ें।

भले वह आदमी आपसो छोटा हो या बड़ा हो किंतु आपने इन नौ अमृतों का उपयोग किया तो आपका दिल बड़ा बनेगा और उसके दिल में आपका बड़प्पन बैठ जायेगा।

आपने अपना फर्नीचर दिखाकर या धन-दौलत और हेकड़ी से उसको प्रभावित किया तो थोड़ी देर के लिए वह भले भौतिक वस्तुओं से प्रभावित हो जाये लेकिन आपका मित्र बनकर नहीं जायेगा, आपके लिए उसके दिल में कुछ-के-कुछ विचार उठेंगे। आप अपना ऐश्वर्य दिखाकर किसी को प्रभावित करने की गलती न करो। आप अपनी बात कहकर, उस पर प्रभाव जमा के उसको प्रभावित करो - यह बहुत छोटी बात है।

लोग मिलने आते हैं तो अपनी सुनाने लग जाते हो किंतु लोग आपकी बात सुनने नहीं आते। आपका दुःख सुनने नहीं आते। वे अपना दुःख और अपनी बात सुनाने आते हैं। आपका अहंकार अपने पर थोपने नहीं आते अपितु अपनी इच्छा और अपनी आकांक्षाओं को तृप्त करने के लिए आपसे मिलते हैं। तो आप लोगों की तृप्ति के कारण बनिये। ऐसा नहीं कि लोगों के आगे आप अपनी हेकड़ी के कारण जाने जायें। मान योग्य कर्म करो पर हृदय में मान की इच्छा न रखो, आप अमानी रहो।

'महाभारत' में आता हैः 'जो अमानी रहता है अर्थात् मान योग्य कर्म तो करता है पर मान की चाह नहीं रखता, वह सबका सम्माननीय हो जाता है।'

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सदगृहस्थों के आठ लक्षण

सदगृहस्थों के लक्षण बताते हुए महर्षि अत्रि कहते हैं कि अनसूया, शौच, मंगल, अनायास, अस्पृहा, दम, दान तथा दया - ये आठ श्रेष्ठ विप्रों तथा सदगृहस्थों के लक्षण हैं। यहाँ इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा हैः

अनसूयाः जो गुणवानों के गुणों का खंडन नहीं करता, स्वल्प गुण रखने वालों की भी प्रशंसा करता है और दूसरों के दोषों को देखकर उनका परिहास नहीं करता - यह भाव अनसूया कहलाता है।

शौचः अभक्ष्य-भक्षण का परित्याग, निंदित व्यक्तियों का संसर्ग न करना तथा आचार - (शौचाचार-सदाचार) विचार का परिपालन - यह शौच कहलाता है।

मंगलः श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा शास्त्रमर्यादित प्रशंसनीय आचरण का नित्य व्यवहार, अप्रशस्त (निंदनीय) आचरण का परित्याग - इसे धर्म के तत्त्व को जानने वाले महर्षियों द्वारा 'मंगल' नाम से कहा गया है।

अनायासः जिस शुभ अथवा अशुभ कर्म के द्वारा शरीर पीड़ित होता हो, ऐसे व्यवहार को बहुत अधिक न करना अथवा सहज भाव से आसानीपूर्वक किया जा सके उसे करने का भाव 'अनायास' कहलाता है।

अस्पृहाः स्वयं अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थ में सदा संतुष्ट रहना और दूसरे की स्त्री की अभिलाषा नहीं रखना - यह भाव 'अस्पृहा' कहलाता है।

दमः जो दूसरे के द्वारा उत्पन्न बाह्य (शारीरिक) अथवा आध्यात्मिक दुःख या कष्ट के प्रतिकारस्वरूप उस पर न तो कोई कोप करता है और न उसे मारने की चेष्टा करता है अर्थात् किसी भी प्रकार से न तो स्वयं उद्वेग की स्थिति में होता है और न दूसरे को उद्वेलित करता है, उसका यह समता में स्थित रहने का भाव 'दम' कहलाता है।

दानः 'प्रत्येक दिन दान देना कर्तव्य है' - यह समझकर अपने स्वल्प में भी अंतरात्मा से प्रसन्न होकर प्रयत्नपूर्वक यत्किंचित देना 'दान' कहलाता है।

दयाः दूसरे में, अपने बंधुवर्ग में, मित्र में, शत्रु में, तथा द्वेष करने वाले में अर्थात् सम्पूर्ण चराचर संसार में एवं सभी प्राणियों में अपने समान ही सुख-दुःख की प्रतीति करना और सबमें आत्मभाव-परमात्मभाव समझकर सबको अपने ही समान समझकर प्रीति का व्यवहार करना - ऐसा भाव 'दया' कहलाता है। महर्षि अत्रि कहते हैं, इन लक्षणों से युक्त शुद्ध सदगृहस्थ अपने उत्तम धर्माचरण से श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर लेता है, पुनः उसका जन्म नहीं होता और वह मुक्त हो जाता हैः

यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोऽपि भवेद् द्विजः।
स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः।।
अत्रि संहिताः 2.42

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गृहस्थ का धर्म

भगवत्पाद साँई श्री लीलाशाहजी महाराज

गृहस्थ आश्रम खराब नहीं है, वह भी अच्छा है। वह एक वृक्ष के तने की भाँति है और उस वृक्ष की जड़ है ब्रह्मचर्य आश्रम तथा उसके फल-फूल हैं वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम। नयी पाठशालाएँ, अनाथाश्रम आदि खोलना अथवा संत-महात्माओं की सेवा के कार्य आदि जो भी पुण्यकर्म होते हैं, वे सब गृहस्थियों से ही होते हैं। ये सभी काम धन से ही होते हैं। धन कोई ऊपर से, आकाश से नहीं आता, बल्कि खेती, व्यापार आदि से ही प्राप्त किया जाता है।

धन कमाना आवश्यक है किंतु वह सच्चाई से ही कमाना चाहिए। सेर बताकर छटाँक कम नहीं देना चाहिए। हृदय में किसी के लिए भी द्वेष, कपट अथवा ठगने की भावना नहीं रखनी

चाहिए। व्यापार में लाभ तो अवश्य ही कमाना है किंतु जब ग्राहक आये, तब समझना चाहिए कि उस रूप में स्वयं भगवान आये हैं और उससे ठगी अथवा छल करना भगवान के साथ ठगी अथवा छल करना है।

रामनाम बोलने से लाभ तो होता है लेकिन साथ में वाणी और कर्म में सच्चाई हो तो अमिट लाभ होता है। नाम-जप के साथ पेशे (व्यवसाय) तथा व्यवहार में भी सच्चाई होगी तो सोने पे सुहागा। गृहस्थ को धन कमाने में बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है, इसलिए वह सच्चे दिल से थोड़ा समय भी भजन करेगा तो भगवान स्वीकार कर लेंगे।

पहले के लोग भी खाते-पीते थे, मिठास और खटास का अनुभव करते थे परंतु वे अपना जीवन सादगी से बिताते थे तथा मन व इन्द्रियों को वश में रखते थे। वे शास्त्र व संत-सम्मत व्यवहार करते थे। आज के लोगों को उनका अनुकरण करना चाहिए। अपने में से कमजोरियों को निकालने के लिए भगवान को प्रार्थना करें कि 'हे प्रभु ! हमें शुभ बुद्धि दो, शक्ति दो, हम अपने कर्तव्य का पालन करें। ' जितना हो सके, उतना बुरे संग और बुरे कर्मों से बचना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह अवश्य मोक्षपद प्राप्त करेगा।

कोई सरकार की प्रशंसा भले ही न करे परंतु यदि चोरी, जुआ आदि कुकर्मों से बचा रहेगा तो उसे जेल नहीं जाना पड़ेगा। यही बात ईश्वर के संबंध में भी है। भगवान न्यायकारी हैं और सब कुछ देखते हैं। हम भले ही उनकी प्रशंसा करें किंतु यदि हम अपराध करेंगे तो उसका दंड हमें अवश्य भोगना पड़ेगा। इसलिए कुकर्मों से अवश्य बचना चाहिए। झूठ मत बोलो तथा ऐसा कोई काम न करो, जिसको करने से लज्जा आये। सदैव भलाई के काम करते रहो। दूसरों को शुभ कर्म करने के लिए साहस दो। यह भी भलाई का कार्य है। कर भला तो हो भला। भगवान तुम्हें शक्ति दें ताकि तुम शुभ कर्म करते रहो।

संसार को स्वप्नवत समझो। यह सब परमात्मा का खेल है। संसार उसी का नाम है, जिस हम देखते हैं। संसार गुलाब का फूल नहीं, काँटा है। यदि भगवान को भुलाकर स्वच्छंद होकर चलोगे यानी बुरा संकल्प, बुरे कर्म करोगे तो वह चुभेगा अर्थात् तुम्हें दुःखी बनायेगा किंतु यदि देह, मन तथा इन्द्रियों पर संयम रखोगे और भगवान का स्मरण करोगे तो सच्चा आनंद प्राप्त करोगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

स्नेह है मधुर मिठास

सारी सृष्टि का आधार है सर्वव्यापक परमेश्वर और उसकी बनायी इस सृष्टि का नियामक, शासक बल है स्नेह, विशुद्ध प्रेम। निःस्वार्थ स्नेह यह सत्य, धर्म, कर्म सभी का श्रृंगार है अर्थात् ये सब तभी शोभा पाते हैं जब स्नेहयुक्त हों।

जीवन का कोई भी रिश्ता-नाता स्नेह के सात्त्विक रंग से वंचित न हो। भाई-बहन का नाता, पिता-पुत्र का, माँ-बेटी का, सास-बहू का, पति-पत्नी का, चाहे कोई भी नाता क्यों न हो, स्नेह की मधुर मिठास से सिंचित होने पर वह और भी सुंदर, आनंददायी एवं हितकारी हो जाता है।

आज हमारा दृष्टिकरण बदल रहा है। टी.वी. के कारण हम लोगों पर आधुनिकता का रंग चढ़ गया है। रहन-सहन, खानपान की शैली कुछ और ही हो गयी है। स्वार्थ की भावना, इन्द्रियलोलुपता, विषय-विकार और संसारी आकर्षण की भावना बढ़ रही है। जो नाश हो रहा है उसी की वासना बढ़ रही है। बड़ों के प्रति आदर और आस्था का अभाव हो रहा है। व्यक्ति कर्तव्य-कर्म से विमुख होते जा रहे हैं। सुख-सुविधा, भोग-संग्रह, मान-बड़ाई में मारे-मारे फिर रहे हैं। ऐसों की मान-बड़ाई टिकती नहीं और श्री रामकृष्ण, रमण महर्षि जैसों का मान-बड़ाई मिटती नहीं। परमार्थ-पथ का पता ही नहीं है, अतः एक दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ लगी हुई है। ईर्ष्या, भेद-भावना बढ़ गयी है।

हम अपना देखने का दृष्टिकोण बदल दें तो हमारे लिए यह सारा संसार स्वर्ग से भी सुंदर बन जाय। अपने पराये का भेद मिट जाय, मेरे तेरे की भावना विलीन हो जाय और सुख का साम्राज्य छा जाय। हम सबको स्नेह दें, सबका मंगल चाहें। तिलांजलि दें परदोष-दर्शन को। किसी के हित की भावना से उसके दोष देखकर उसे सावधान करना अलग बात है किंतु दूसरों को सुधारने की धुन में हम खुद पतन की खाई में न गिरें, इसका ख्याल रहे।

परिवार के सदस्यों में पारस्परिक संबंध, भाव कैसे होने चाहिए, इसके विश्लेषण के लिए हम सास बहू का रिश्ता लें।

सास का कर्तव्य है कि बहू को बेटी जैसा ही स्नेह दे। बहू माँ-बाप का घर छोड़कर आयी है। उसे ससुराल में भी अपने मायके जैसा ही अनुभव हो, परायापन न लगे ऐसा उसके साथ स्नेहमय व्यवहार करे। उसकी कमीबेशियों को डाँटकर नहीं प्यार से समझाकर दूर करे। बहू आने के बाद घर की जिम्मेदारी उसे सौंपकर केवल एक मार्गदर्शिका की भूमिका निभाये। ढलती उम्र में भी अपना अधिकार बनाये रखने की कोशिश न करें। सांसारिक बातों-व्यवहारों से विरक्त होकर भगवद-आराधन, सत्संग-श्रवण में समय बितायें। भगवान श्रीराम की माता कौशल्याजी का आदर्श सामने रखकर परलोक सँवारने का यत्न करें।

दूसरी ओर बहू का कर्तव्य है कि सास को अपनी माँ ही समझें, 'माँ' कहकर पुकारे। विदेशियों जैसे 'She is my mother-in-law' कहने वाली बहुएँ अपने इस पावन रिश्ते में कायदे-कानून को घसीटकर इसे कानूनी रिश्ता बना देती हैं। फिर उन्हें अपनी सास से माँ के प्यार की आशा भी नहीं रखनी चाहिए। हम दूसरों से स्नेह चाहते हैं तो पहले हमें दूसरों से स्नेहभरा आचरण करना चाहिए। बहू घर के कार्यों में सास-ससुर की सलाह ले, अन्य बुजुर्गों की सलाह लें। इससे उनके प्रदीर्घ अनुभव का लाभ उसे मिलेगा। बड़ों से आदरयुक्त व्यवहार करे, उन्हें सम्मान

दे और छोटों को स्नेह दे। रसोई बनाते समय घर के सभी सदस्यों के स्वास्थ्य को महत्ता दे व रुचिकर, ऋतु-अनुकूल, प्रकृति-अनुकूल भोजन बनाये।

सास-बहू दोनों का कर्तव्य है कि बच्चों को उत्तम संस्कार दें। अपनी पावन संस्कृति एवं सनातन धर्म के अनुसार उचित-अनुचित की शिक्षा दें। अपनी भारतीय संस्कृति की हितकारी, पावन परम्पराओं को नष्ट न होने दें, आदरपूर्वक उनका पालन करें और आगे की पीढ़ियों को उनकी महत्ता बताकर यह धरोहर आगे बढ़ायें।

घर आने वाले व्यक्ति का मीठे वचनों से स्वागत करें। प्रसन्नता व मीठे, हितकारी वचनों से किया गया स्वागत फूल-हारों एवं मेवे-मिठाइयों से किये गये स्वागत से कई गुना श्रेष्ठ होता है। मधुर वाणी बोलने में हमारा जाता क्या है ? रूखे या कटु शब्दों के दूसरों के हृदय को दुःख पहुँचता है और मीठे वचनों से सुख।

व्यक्तिगत इच्छा को नहीं सद्भाव को पोषण दें। अपने-अपने कर्तव्य का तत्परता से पालन करें और स्नेह की मधुर मिठास छलकाते जायें। ऐसा करने से आपसी मनमुटाव, स्वार्थ-भावना मिट जायेगी और घर-बाहर का सारा वातावरण मधुमय, स्नेहमय हो जायेगा। मन, निर्मल, आनंदमय हो जायेगा।

निर्दोष-निःस्वार्थ प्रेम ही वशीकरण-मंत्र है, जो मनुष्य को ऊँची मंजिल तक ले जाता है। सच्ची-ऊँची मंजिल क्या है ? अपने प्रेम को पारिवारिक प्रेम के दायरे से बाहर निकालकर व्यापक बनाते हुए वैश्विक प्रेम में, भगवत्प्रेम में परिणत करना।

अपने कर्तव्य का तत्परतापूर्वक पालन और दूसरे के अधिकारों की प्रेमपूर्वक रक्षा-यही पारिवारिक व सामाजिक जीवन में उन्नति का सूत्र है। और भी स्पष्ट रूप से कहें तो 'अपने लिए कुछ न चाहो और भगवद्भाव से दूसरों की सेवा करो। ' यही पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक उन्नति का महामंत्र है। क्या आप इसका आदर कर इसे अपने जीवन में उतारेंगे ? यदि हाँ तो आपका जन्म-कर्म दिव्य हो ही गया मानो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बालकों में संस्कार-सिंचन कैसे करें ?

(पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से)

कुछ माता-पिता अपने बच्चे को खूब लाड़-लड़ाते हैं वे सोचते हैं कि बेटे को बढ़िया स्कूल में पढ़ायेंगे, पायलट बनायेंगे। इसके लिए बच्चे को छात्रावास में भी रखते हैं किंतु बच्चा ऐसा हो जाता है कि न घर में रहता है, न छात्रावास में रहता है, न पायलट बनता है, वरन् फुटपाथी हो जाता है। ऐसे बच्चों को मैं जानता हूँ।

कुछ माँ-बाप बच्चों को खूब रोकते टोकते हैं, क्योंकि माँ-बाप जैसा चाहते हैं बच्चे वैसा नहीं कर पाते। बच्चों की अपनी उमंगे हैं, अपनी ख्वाहिशें हैं, ज्यादा टोकाटाकी से बच्चा बेचारा भीतर ही भीतर सिकुड़ता रहता है। फिर वह छुपकर गलती करता है और उसमें बेईमानी करने की आदत पनपती है।

कभी माता-पिता की टोकाटाकी हितकारक होती है तो कभी गड़बड़ी कर देती है। माता-पिता या कुटुम्बी के लिए उचित है कि वे बच्चे को इतना विश्वास में लें कि बच्चा कोई गलती करे तो अपने कुटुम्बी को बता दे। गलती जानकर उसको ज्यादा टोकें नहीं, गलती का मूल खोजें तथा उस मूल को हटा दें, बच्चा फिर गलती नहीं करेगा।

बालक पैदा होता है तब से लेकर 7 साल तक उसका मूलाधार केन्द्र विकसित होता है। इन 7 सालों तक बालक बीमार न हो, इसकी सावधानी बरतें। 2-3 साल का होने पर साल में एक बार 3-4 दिन पपीता और उसके बीज खिलायें ताकि उसका पेट ठीक रहे।

बालक इधर-उधर की चीजें खाता है, भोजन के समय ठीक से नहीं खाता तो आगे चलकर उसका पाचनतंत्र खराब हो जायेगा। माता-पिता को चाहिए कि खान-पान में ज्यादा लाड़ न लड़ायें व खान-पान की सलाह किसी वैद्य या जानकार से लें।

7 से 14 वर्ष की उम्र में स्वाधिष्ठान केन्द्र विकसित होता है। अगर इस उम्र में ध्यान न दिया गया तो उसमें गंदी भावनाएँ और गंदी आदतों वाले बच्चों के संस्कार पड़ेंगे। इस समय वह जैसा देखेगा और जैसी भावनाएँ उसके चित्त में आ गयीं वे सब उसे जीवन भर नचाती रहेंगी। माता-पिता के लिए उचित है कि उसकी अच्छी भावनाओं का पोषण करें तथा बुरी भावनाओं को निकालने के लिए प्रोत्साहित करें लेकिन दबाव न डालें।

14 से 21 साल तक मणिपुर केन्द्र विकसित होता है। उन दिनों में संयम-पालन, सूर्यनमस्कार आदि करने से वासनाओं, भावनाओं के आवेग में यह भय-चिंता में बच्चों से जो गलतियाँ होती हैं उन पर वे स्वयं नियंत्रण पा सकते हैं और बुद्धिपूर्वक अच्छे इरादे से कर्म करके ऊँचे उठ सकते हैं।

भ्रूमध्य को अनामिका से हलका-सा रगड़ते हुए **'ॐ गं गणपतये नमः', 'ॐ गुरुभ्यो नमः'** जपकर तिलक करें। फिर 2-3 मिनट प्रणाम की मुद्रा में सिर जमीन पर लगाकर रखें। इससे निर्णयशक्ति, बौद्धिक शक्ति में जादुई लाभ होता है। क्रोध, आवेश, वैरभाव पर नियंत्रण पाने वाले रसों का भीतर विकास होता है।

शवासन में आत्मिक शक्तियाँ खींचकर पाँचों शरीरों में लाने की व्यवस्था है। बाह्य शरीर का मोटा हो जाना, वांछनीय नहीं है, मजबूत हो जाना वांछनीय है। बाह्य शरीर के साथ प्राणमय शरीर भी विकसित होना चाहिए। प्राणबल कमजोर है, मनोबल कमजोर है तो दूसरे के प्राणबल व मनोबल के आगे आपका मन सिकुड़ जायेगा। आपकी विचारशक्ति कमजोर है तो दूसरा आपको पटा लेगा। अतः बालक के पाँचों शरीर विकसित हों इस पर ध्यान दें।

"बापू जी ! बच्चे बहुत परेशान करते हैं। क्या करें ?"

ज्याद टोके नहीं किंतु उस उछलकूद को वे सुव्यवस्थित कर सकें-ऐसा उपाय करें। ज्यादा टोकेंगे तो वह छुपकर करेगा अथवा उसका मन दब जायेगा या विरोधी हो जायेगा। इस तरह उसका हित चाहते हुए भी आप अनजाने में अहित कर बैठते हैं।

बच्चे चंचल हैं तो उन्हें ज्यादा न रोकें-टोकें। उनकी यह अवस्था ही है उछलकूद करने की। माता-पिता ज्यादा रोकेंगे-टोकेंगे तो उनके मन में माता-पिता के लिए जो आदर, मान और स्नेह होना चाहिए, वह नहीं होगा। 12 साल के दिमागवाले को बलात् 60 सालवाले जैसा रहने-करने के लिए कहें तो उसके लिए वैसा कर पाना सम्भव नहीं है।

"क्या बच्चा जैसा करना चाहे, उसे करने दिया जाये ?"

हाँ, कुछ तो करने दिया जाय और कुछ मोड़ दिया जाय। अगर अत्यन्त अनुचित करता है तो दबाव से अनुचित छोड़े इसकी अपेक्षा सुझाव से छोड़े - ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

'चाय न पियो..... कॉफी न पियो....' ऐसा कहने की जगह उससे कहोः 'केवल दूध पियो।' इनकार की अपेक्षा बच्चे को मोड़ने की कला माता-पिता को सीखनी चाहिए।

'तेरे में यह कमी है, यह कमी है....' ऐसा करके आप अनजाने में बच्चे के साथ जो जुल्म करते हैं, वह न करें। बच्चे में आपको 100 अवगुण दिखते हैं, ऐसे ही उसमें कोई-न-कोई सदगुण भी तो होगा। जो गुण है उसकी प्रशंसा करें, उसका उत्साह बढ़ायें। फिर उसमें जो कमी है उसके प्रति थोड़ी-सी ग्लानि पैदा करा दें, 'बेटा ! ऐसा तुझे शोभा नहीं देता। तू चाहे तो इस कमी को निकाल सकता है।' इस तरह अपनी कमी के प्रति मन में ग्लानि आने से वह स्वयं ही उसे निकाल देगा।

लोग बोलते हैं, यह उन्नति का युग है। मैं बोलता हूँ कि युवान-युवतियों के लिए ऐसा पतन का युग जो अभी चल रहा है कभी नहीं आया। बच्चों और युवावर्ग पर बड़ा जुल्म हो रहा है। उनका शरीर मजबूत नहीं हो रहा है, मनोबल विकसित नहीं हो रहा है एवं बुद्धिबल सूक्ष्मता की यात्रा नहीं कर रहा है।

अतः बच्चे को सुबह-शाम 10-10 प्राणायाम करवाने चाहिए, सूर्यनमस्कार करवाने चाहिए। आश्रम से प्रकाशित 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' ग्रंथ का अध्ययन-मनन करना तथा इसमें दिये हुए निर्देशों के अनुसार अपने को ढालने का प्रयत्न करना चाहिए।

जग में शांति लानी है, खुशियाँ लानी हैं तो ऋषि-पद्धति से शिक्षण की आवश्यकता है। इस पद्धति का उपयोग करके आप संतान को ओजस्वी-तेजस्वी अवश्य बना सकते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बच्चों को क्या दें ?

(पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से)

हमारे भारत के बच्चे-बच्चियों के साथ बड़ा अन्याय हो रहा है। अश्लील चलचित्रों, उपन्यासों द्वारा उनके साथ बड़ा अन्याय किया जा रहा है। फिर भी हमारे बच्चे-बच्चियाँ अन्य देशों के युवक-युवतियों की अपेक्षा बहुत अच्छे हैं, परिश्रमी हैं। कष्ट सहते हैं, देश-विदेश में जाकर बेचारे रोजी-रोटी कमा लेते हैं, दूसरे देशों के युवक-युवतियों की तरह विलासी नहीं हैं। यह सब उनके माँ-बाप की तपस्या है। माँ-बाप जिनका सान्निध्य-सेवन करते हैं उन संतों की तपस्या और हमारी भारतीय संस्कृति के प्रसाद की महिमा है। यह ऐसा प्रसाद है कि सब दुःखों को सदा के लिए मिटाने की ताकत रखता है। यह कहीं जा के, किसी को हटा के, किसी को पा के दुःख नहीं मिटता। कुछ मिल जाय तब दुःख मिटे, कुछ हट जाय तब दुःख मिटे.... नहीं। भारतीय संस्कृति का ज्ञान-प्रसाद तो इतना निराला है कि आप चाहे जैसी परिस्थिति में हैं, वह आपको सुखी बना देता है, हर परिस्थिति में निर्दुःख होने की युक्ति सिखा देता है। मगर दुर्भाग्य है कि हमारे देशवासी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर अपने साथ, अपने बच्चों के साथ अन्याय कर बैठते हैं।

दिल्ली में मेरे सत्संग में एक पुलिस अफसर आया था। उसके दोनों बच्चों को देखकर मुझे तरस आया। मैंने कहा कि "इनका विकास नहीं होगा, इनके पेट में तकलीफ है।"

बोलाः "चॉकलेट खाते हैं।"

मैंने कहाः "इतनी चॉकलेट क्यों खिलाते हो ? चॉकलेट से, फॉस्टफूड से कितनी-कितनी हानि होती है, पेट की खराबी होती है।"

बस, पैसे मिल गये, अधिकार मिल गया तो खिलाओ, बच्चे हैं....। बच्चों से पूछते हैं- "क्या चाहिए बेटे ?" बच्चे टी.वी. देखते रहते हैं तो बोल देते हैं - 'यह चाहिए, वह चाहिए.....।' इससे बच्चों का स्वास्थ्य और हमारे भारत की गरिमा बिगड़ रही है। बच्चों का माँ-बाप के प्रति सदभाव नहीं रहा। यह कॉनवेन्ट स्कूलों में पढ़ाई का परिणाम है। अगर माँ-बाप के जीवन में सत्संग नहीं है तो जो सूझबूझ आवश्यक है उससे माँ-बाप भी वंचित हो जाते हैं। अज्ञानता बढ़ाने में, विषय विकार बढ़ाने में अथवा अधिकारलोलुप होकर संघर्ष करने में सुख का, ज्ञान का निवास नहीं है। एकत्व के ज्ञान से ही सारी समस्याओं का समाधान है। यह ज्ञान गुरुकुलों में मिलता है।

कॉन्वेंट स्कूलों में बच्चों को हिन्दू साधुओं के प्रति नफरत करना सिखाया जाता है। हिन्दू देवी देवताओं को नीचा दिखाते हैं, हनुमानजी को बंदर साबित कर देते हैं। पूँछवाले किसी जानवर का चित्र बनाते हैं और बच्चों से पूछते हैं कि 'यह क्या है ?' बच्चे कहते हैं- 'जानवर।'

'कैसे ?'

'क्योंकि इसको पूँछ है।'

फिर हनुमानजी का चित्र बनाते हैं। बोलते हैं- 'देखो, यह भी जानवर है। ' बच्चों में ऐसे जहरी संस्कार डाल देते हैं। वे ही बच्चे जब बड़े अधिकारी बनते हैं तो हिन्दू होते हुए भी हिन्दू

साधुओं के लिए, हिन्दू धर्म के लिए और हिन्दू शास्त्रों के लिए उनके मन में नफरत पैदा हो जाती है, इसलिए बेचारे शराबी हो जाते हैं। शराब पीने से बुद्धि मारी जाती है, फिर न पत्नी का मन सँभाल सकते हैं, न माँ-बाप का मन सँभाल सकते हैं। ऐसे कई युवकों को मैं जानता हूँ। एक व्यक्ति मेरे पास आया और रोते हुए बोला कि 'मेरी लड़की ने ग्रेजुएशन किया, तीस हजार की सर्विस थी और जिससे शादी की उस लड़के की भी पैंतालीस हजार की सर्विस थी। बयालीस लाख रूपये शादी में खर्च किये लेकिन बाबा ! बेटी को चार महीने का गर्भ है और उसको लाकर घर पर छोड़ दिया।'

क्योंकि पढ़ाई ऐसी थी कि खाओ-पियो-मौज करो। और भी कइयों को देखा है। एक व्यक्ति, वह खुद तो किसी कम्पनी में मैनेजर है, पत्नी भी मैनेजर है, बारह-पन्द्रह लाख वह भी कमाती है। फिर भी दुःखी हैं क्योंकि उन्हें शिक्षा ही उलटी मिली है, संस्कार ही भोगों के मिले हैं। दूसरों का कुछ भी हो, खुद को मजा आना चाहिए। बाहर का मजा लेने का जो संस्कार है, वे अंदर के मजे से वंचित कर देते हैं और पाशवी वृत्तियाँ जगाते हैं। जिन बच्चों को बचपन में ही अच्छे संस्कार मिले हैं, ऐसे बच्चों के लिए बाहरी सुख-सुविधा के साधन उतना मायना नहीं रखते। वे जैसी भी परिस्थिति में रहते हैं, स्वयं तो संतुष्ट रहते हैं, प्रसन्न रहते हैं उनके सम्पर्क में आने वालों को भी उनसे कुछ न कुछ सीखने को मिल जाता है। हम अपने बच्चों को धन न दें सकें तो कोई बात नहीं, बड़े-बड़े बँगले, कोठियाँ, गाडियाँ बैंक बैलेंस न दे सकें तो कोई बात नही परंतु अच्छे संस्कार जरूर दें। अगर आपने अपने बच्चों को अच्छे संस्कारों से सम्पन्न बना दिया तो समझो, आपने उन्हें बहुत बड़ी सम्पत्ति दे दी, बहुत बड़ी पूँजी का मालिक बना दिया। यह अच्छे संस्कारों की पूँजी आपके लाडलों को जीवन के हर क्षेत्र में सफल बनायेगी, यहाँ तक कि लक्ष्मीपति भगवान से भी मिलने के योग्य बना देगी। बच्चों के मन में अच्छे संस्कार डालना यह हम सबका कर्तव्य है, इसमें हमें प्रमाद नहीं करना चाहिए, लापरवाही नहीं करनी चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विश्व भर के दम्पत्तियों में भारतीय दम्पत्ति सर्वाधिक सुखी व संतुष्ट

सनातन संस्कृति के दिव्य संस्कारों का प्रभाव देख चकित हुए विश्लेषक

कुछ समय पहले मनोवैज्ञानिकों ने 'प्लेनेट प्रोजेक्ट' के अन्तर्गत इंटरनेट के माध्यम से विश्व भर के दम्पत्तियों के वैवाहिक जीवन का सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य था 'किस देश के पती-पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट हैं ?'

लम्बी जाँच के बाद जब निष्कर्ष निकाला गया तो विश्लेषक यह देखकर चकित रह गये कि विश्व के 250 देशों में से भारतीय दम्पत्ति एक-दूसरे से सर्वाधिक सुखी व संतुष्ट हैं। अन्य

देशों में ऐसा देखने को नहीं मिला 'वहाँ के दम्पत्ति अपने जीवन-साथी में कुछ-न-कुछ बदलाव अवश्य लाना चाहते हैं।

भारतीय संस्कृति उच्छ्रंखलता को निषिद्ध करके सुसंस्कारिता को प्राथमाकित देती है। दूसरे देशों में प्रायः ऐसा नहीं है। यूरोप में तो स्वतन्त्रता के नाम पर पशुता का तांडव हो रहा है। एक दिन में तीन पति बदलने वाली औरतें भी अमेरिका जैसे देश में मिल जाती हैं।

यूरोप के कई देशों में तो शादी को मुसीबत माना गया है तथा यौन स्वैच्छाचार को वैध माना जाता है जबकि भारतीय संस्कृति में अपनी पत्नी के साथ शास्त्रानुकूल शारीरिक संबंध ही वैध माना जाता है। अन्य स्थितियों में इसे क्षणिक मजे के लिए स्नायविक शक्ति का ह्रास करने वाला मूर्खतापूर्ण कार्य कहा गया है।

भारत के ऋषि-मुनियों ने सत्शास्त्रों के रूप में अपने भावी संतानों के लिए दिव्य ज्ञान धरोहर के रूप में रख छोड़ा है तथा इस कलियुग में भी ब्रह्मवेत्ता संत नगर-नगर जाकर समाज में चरित्र, पवित्रता, अध्यात्मिकता एवं कर्तव्यपरायणता के सुसंस्कार सींच रहे हैं।

इसी का यह शुभ परिणाम है कि पाश्चात्य अपसंस्कृति के आक्रमण के बावजूद भी ऋषि-मुनियों का ज्ञान भारतवासियों के चरित्र एवं संस्कारों की रक्षा कर रहा है तथा इन्हीं संस्कारों के कारण वे सुखी एवं संतुष्ट जीवन जी रहे हैं।

समाज में इतनी उच्छ्रंखलता, मनमुखता एवं पशुता का खुला प्रचार होते हुए भी दुनिया के 250 देशों का सर्वेक्षण करने वालों ने पाया कि हिन्दुस्तान का दाम्पत्य जीवन सर्वश्रेष्ठ एवं संतुष्ट जीवन है। यह भारतीय संस्कृति के दिव्य ज्ञान एवं ऋषि-मुनियों के पवित्र मनोविज्ञान का प्रभाव है।

रामायण, महाभारत एवं मनुस्मृति व मानवता का प्रभाव ही तो है कि आज भी सर्वेक्षण करने वाले प्लेनेट प्रोजेक्टरों को 250 देशों में केवल भारतीय दम्पत्तियों को ही परस्पर सुखी, संतुष्ट एवं श्रेष्ठ कहना पड़ा। धन्य है भारत की संस्कृति !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दाम्पत्य प्रेम का आदर्श

महात्मा गाँधी और उनकी पत्नी कस्तूरबा का दाम्पत्य प्रेम विषय-वासना से प्रेरित न होकर एक आदर्श, विशुद्ध, निष्कपट प्रेम का जाज्वल्यमान उदाहरण था।

एक बार कस्तूरबा को कोई बीमारी हो गयी। चिकित्सक ने उनसे कहा कि "आप नमक छोड़ दीजिए ताकि आपका रोग ठीक हो जाय।"

लेकिन माँ को नमक छोड़ना सँभव न लगा। उन्होंने गाँधी जी से कहाः "मैं नमक नहीं छोड़ सकती। बिना नमक के साग-दाल कैसे खाये जा सकते हैं ?"

गाँधीजी ने कहाः "अच्छा, तो हम 20 दिन तक नमक छोड़ते हैं।"

माँ समझ गयीं कि बिना नमक का भोजन करेंगे तो मुझे भी बिना नमक का भोजन करना पड़ेगा। माँ को बिना नमक का भोजन करने में गाँधी जी का साथ मिल गया और उनका मनोबल बढ़ गया। पत्नी का मनोबल बढ़ाने हेतु गाँधी जी ने अपनी सुविधा की परवाह नहीं की।

'....तो मैं नहीं खाऊँगी'

कस्तूरबा भोजन बनाने में बड़ी कुशल थीं लेकिन जब से गाँधी जी ने अपने जीवन में अस्वाद-व्रत को स्थान दिया था, तब से उनकी यह कला उतनी काम में नहीं आती थी। फिर भी वे कभी-कभी कोई स्वादिष्ट व्यंजन बना ही लेती थीं। उन्हें अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाकर खाने और दूसरों को प्रेम से खिलाने में बड़ा आनंद आता था।

एक दिन उन्होंने मनु बहन से पूरन-पूरी (एक विशेष प्रकार की मीठी रोटी) बनाने को कहा और बोलीं- "आज तो मैं भी पूरन-पूरी खाऊँगी। तू जाकर बापूजी (गाँधी जी) से पूछ आ कि वे खायेंगे ?"

माँ की तबीयत ढीली तो थी ही। अगर वे पूरन-पूरी जैसी भारी चीज खातीं तो उससे उनके हृदय की धड़कन बढ़ जाने का डर था। इसलिए जब मनु बहन गाँधी जी से पूछने गयीं, तब गाँधी जी ने माँ का ख्याल करके कहाः "अगर कस्तूरबा पूरन-पूरी न खाये तो मैं खाऊँगा।"

माँ को निश्चय करने में एक क्षण की भी देर न लगी। वे बोलीं- "अच्छा, तो मैं नहीं खाऊँगी।"

इसके बाद कस्तूरबा ने मनु बहन के पास बैठकर गाँधी जी और दूसरे सब लोगों के लिए पूरन-पूरियाँ बनवायीं और सबको प्रेम से खिलायीं लेकिन स्वयं चखी तक नहीं।

'मेरी पत्नी मेरे लिये क्या सोचेगी ?' ऐसा न सोचकर उनके हित की भावना को प्रधानता देने वाले गाँधी जी और 'मेरे पति मेरे हित की भावना से ही ऐसा कर रहे हैं। ' इस प्रकार का विवेक तथा अपने पति के प्रति विशुद्ध, उत्कट प्रेम रखने वाली त्याग की प्रतिमूर्ति कस्तूरबा का दाम्पत्य जीवन सभी गृहस्थों के लिए एक उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है।

पैसा और प्रसिद्धि के पीछे समाज को पथभ्रष्ट करने का जघन्य अपराध कर रहे फिल्मी अभिनेताओं व अभिनेत्रियों की नकल करके अपना दाम्पत्य जीवन तबाह करने की मूर्खता करने के बजाय हमारे भारतवासी उतना ही समय संत-महात्माओं की जीवनियाँ पढ़ने में लगायें तो कितना अच्छा होगा !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

त्याग और साहस

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु कलकत्ता में विज्ञान का गहन अध्ययन तथा शोधकार्य कर रहे थे, साथ ही एक महाविद्याल में पढ़ाते भी थे। उसी महाविद्यालय में कुछ अंग्रेज प्राध्यापक भी विज्ञान पढ़ाते थे। उनका पद तथा शैक्षणिक योग्यता श्री बसु के समान होते हुए भी उन्हें श्री बसु से अधिक वेतन दिया जाता था, क्योंकि वे अंग्रेज थे।

अन्याय करना पाप है किंतु अन्याय सहना दुगना पाप है - महापुरुषों के इस सिद्धान्त को जानने वाले श्री बसु के लिए यह अन्याय असहनीय था। उन्होंने सरकार को इस विषय में पत्र लिखा परंतु सरकार ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। श्री बसु ने इस अन्याय के विरोध में प्रति मास के वेतन का धनादेश (चेक) यह कहकर लौटाना आरम्भ किया कि जब तक उन्हें अंग्रेज प्राध्यापकों के समान वेतन नहीं दिया जायेगा, वे वेतन स्वीकार नहीं करेंगे।

इससे घर में पैसे की तंगी होने लगी। अध्ययन और शोधकार्य बिना धन के हो नहीं सकते थे। श्री बसु चिंतित हुए और इस विषय में उन्होंने अपनी पत्नी से चर्चा की। इस पर उनकी पत्नी श्रीमती अबला बसु ने उन्हें अपने सब आभूषण दे दिये और कहाः "इनसे कुछ काम चल जायेगा। इसके अलावा, अगर हम लोग कलकत्ता के महँगे मकान को छोड़कर हुगली नदी के पार चंदन नगर में सस्ते मकान में रहें तो खर्च में काफी कमी आ जायेगी।"

श्री बसु बोलेः "ठीक है, लेकिन हुगली को पार करके प्रतिदिन कलकत्ता कैसे पहुँचूँगा ?" श्रीमती बसु ने सुझाव दियाः "हम लोग अपनी पुरानी नाव की मरम्मत करा लेते हैं। उसमें आप प्रतिदिन आया-जाया करें।" इस पर श्री बसु ने कहाः "मैं यदि प्रतिदिन नाव लेकर आऊँगा-जाऊँगा तो इतना थक जाऊँगा कि फिर न छात्रों को पढ़ा सकूँगा, न शोधकार्य कर सकूँगा।" परंतु श्रीमती बसु हार मानने वाली नहीं थीं। वे बोलीं- "ठीक है, आप नाव मत खेना। मैं प्रतिदिन नाव खेकर आपको लाया और ले जाया करूँगी।"

उस साहसी, दृढ़निश्चयी महिला ने ऐसा ही किया। इसी कारण श्री जगदीशचन्द्र बसु अपना अध्ययन और शोधकार्य जारी रख सके और एक विश्वविख्यात वैज्ञानिक बन सके। अंततः अंग्रेज सरकार झुकी और श्री बसु को अंग्रेज प्राध्यापकों के समान वेतन मिलने लगा।

संत श्री भोले बाबा ने कार्य-साफल्य की कुंजी बताते हुए कहा ही हैः

जो जो करे तु कार्य कर, सब शांत होकर धैर्य से।
उत्साह से अनुराग से, मन शुद्ध से बल-वीर्य से।।

पति-पत्नी में आपस में कितना सामंजस्य, एक दूसरे के लिए कितना त्याग, सहयोग होना चाहिए तथा जीवन की हर समस्या से साथ मिलकर जूझने की कैसी भावना होनी चाहिए इसका एक उत्तम उदाहरण पेश किया श्रीमती बसु ने। उनका नाम भले अबला था किंतु उन्होंने अपने आचरण से यह सिद्ध कर दिखाया कि किसी भी स्त्री को अपने-आपको अबला नहीं मानना चाहिए, अपितु धैर्य से हर कठिनाई का सामना करके यह सिद्ध कर दिखाना चाहिए कि वह सबला है, समर्थ है।

विश्वनियंता आत्मा-परमात्मा सबका रक्षक-पोषक है, सर्वसमर्थ है। ॐ.....ॐ.... दुर्बलता और जुल्म का तथा दुर्बल-विचारों और व्यर्थ की सहिष्णुता का त्याग करें। सबल, सुयोग्य बनें और अपने सहज-सुलभ आत्मा-परमात्मा के बल को पायें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

......आपके घर भी राम व कृष्ण सम बालक जन्मेंगे

'श्रीमद् भागवत' के तीसरे स्कन्ध में आता है कि एक बार दक्षपुत्री दिति ने कामातुर हो सायंकाल के समय ही अपने पति महर्षि कश्यप से पुत्रप्राप्ति की प्रार्थना की। उस समय कश्यप जी अग्निशाला में ध्यानस्थ थे।

दिति कामदेव के वेग से अत्यन्त बेचैन और बेबस हो रही थी। उसने बहुत सी बातें बनाकर दीन होकर कश्यप जी से पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की। तब उन्होंने उसे सुमधुर वाणी में समझाते हुए कहाः "जिस प्रकार जहाज पर चढ़कर मनुष्य महासागर को पार कर लेता है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रमी दूसरे आश्रमों को आश्रय देता हुआ अपने आश्रम द्वारा स्वयं भी दुःख-समुद्र के पार हो जाता है।

देवी ! इन्द्रियरूपी शत्रुओं को जीतना अन्य आश्रमवालों के लिए अत्यंत दुर्लभ है किंतु जिस प्रकार किले का स्वामी लूटने वाले शत्रुओं को सुगमता से ही अपने अधीन कर लेता है, उसी प्रकार हम अपनी विवाहिता पत्नी का आश्रय लेकर इन इन्द्रियरूप शत्रुओं को सहज में ही जीत लेते हैं। तुम्हारी संतानप्राप्ति की इच्छा को मैं यथाशक्ति अवश्य पूर्ण करूँगा परंतु अभी तुम एक मुहूर्त ठहरो। यह अत्यंत घोर समय राक्षसादि घोर जीवों का है और देखने में भी बड़ा भयानक है। इसमें भगवान भूतनाथ के गण भूत-प्रेतादि घूमा करते हैं। साध्वी ! इस संध्याकाल में भूतभावन, भूतपति भगवान शंकर अपने गण भूत-प्रेतादि के साथ विचरा करते हैं।"

पति के इस प्रकार समझाने पर भी कामातुर दिति ने वेश्या के समान निर्लज्ज होकर बार-बार आग्रह किया। तब कश्यपजी ने उस निंदित कर्म में अपनी भार्या का बहुत आग्रह देख दैव को नमस्कार किया और एकांत में उसके साथ समागम किया। फिर जल में स्नान कर प्राण और वाणी का संयम करके विशुद्ध ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म का ध्यान करते हुए उसी का जप करने लगे। दिति को भी उस निंदित कर्म के कारण बड़ी लज्जा आयी और वह ब्रह्मर्षि के पास जाकर सिर नीचा करके इस प्रकार कहने लगीः

"ब्रह्मन् ! भगवान रूद्र भूतों के स्वामी हैं, मैंने उनका अपराध किया है किंतु वे भूतश्रेष्ठ मेरे इस गर्भ को नष्ट न करें। मैं भक्तवांछाकल्पतरू, उग्र एवं रूद्ररूप महादेव को नमस्कार करती हूँ।"

प्रजापति कश्यप ने सायंकालीन संध्या-वंदनादि कर्म से निवृत्त होने पर देखा कि दिति थर-थर काँपती हुई अपनी संतान की लौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिए प्रार्थना कर रही है। तब उन्होंने उससे कहाः "तुम्हारा चित्त कामवासना से मलिन था, वह समय भी ठीक नहीं था और तुमने मेरी बात भी नहीं मानी तथा देवताओं की भी अवहेलना की। इससे अमंगलमयी ! तुम्हारी कोख से हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु नाम के दो बड़े ही अमंगलमय और अधम पुत्र उत्पन्न होंगे। उनके अत्याचार अत्यधिक बढ़ जायेंगे, तब स्वयं श्री जगदीश्वर उनका वध करेंगे।

देवी ! तुमने अपने किये पर शोक और पश्चाताप प्रकट किया है, तुम्हें शीघ्र ही उचित-अनुचित का विचार भी हो गया तथा भगवान विष्णु, शिव और मेरे प्रति भी तुम्हारा बहुत आदर जान पड़ता है, इसलिए तुम्हारे एक पुत्र हिरण्यकशिपु के चार पुत्रों में से एक भगवान का भक्त प्रह्लाद अवतरित होगा। वह ऐसा होगा जिसका सत्पुरुष भी मान करेंगे और जिसके पवित्र यश को भक्तजन भगवान के गुणों के साथ गायेंगे।"

पूज्य बापू जी कहते हैं- "मनुष्य को जन्माष्टमी, शिवरात्रि, नवरात्रि आदि पर्व-त्यौहारों तथा एकादशी, पूनम, अमावस्या, ग्रहण, शौच, श्राद्ध, संध्याकाल - इन अवसरों पर संयम रखना चाहिए। नहीं तो आसुरी, कुसंस्कारी अथवा विकलांग संतान उत्पन्न होती है। यदि संतान नहीं हुई तो दंपती को कोई खतरनाक बिमारी हो जाती है, जिससे वे बेचारे उम्र भर रोते रहते हैं। वर्तमान युग में कई माता-पिता ऐसा सोचते हैं कि हमें ऐसे पुत्र क्यों हुए ? उन्हें यह कथा समझ लेनी चाहिए। आजकल स्त्री अथवा पुरुष गर्भाधान के लिए उचित-अनुचित समय-तिथि का ध्यान नहीं रखते हैं। परिणाम में समाज में आसुरी प्रजा बढ़ रही है। बाद में ऐसे माता-पिता फरियाद करते रहते हैं कि हमारे पुत्र हमारी आज्ञा में नहीं चलते हैं, उनका चाल-चलन ठीक नहीं है इत्यादि। परंतु यदि माता-पिता शास्त्र की आज्ञानुसार रहें तो उनके यहाँ दैवी और संस्कारी संतानें उत्पन्न होंगी, राम और कृष्ण के समान बालक जन्म लेंगे।

इस प्रकार के आविष्कार जो वैदिक संस्कृति में हुए हैं, वे दूसरे मजहबों में मैंने आज तक देखे सुने नहीं हैं। इसलिए मैं तो अपना सौभाग्य मानता हूँ कि मेरा भारत में जन्म हुआ है और मुझे वैदिक संस्कृति में ईश्वरप्राप्ति का सहज सुलभ सत्संग व साधन मिला।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सुखमय जीवन का महामंत्र

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

दशरथ जी अपने चारों पुत्रों का विवाह करा के बहुओं को लेकर घर पहुँचे, उसके बाद कौशल्याजी तथा अन्य लोग जो जनकपुर नहीं गये थे, वे दशरथजी के श्रीमुख से विवाह की वार्ता सुनकर गदगद हो रहे थे।

कौशल्याजी ने कहाः "महाराज ! जनकजी के विषय में बताने की कृपा कीजिये।" तब दशरथों की आँखों से झर-झर आँसू बरसने लगे। कौशल्याजी ने अनुमान लगाया कि शायद जनकजी के दहेज कम दिया है इसीलिए दशरथजी दुःखी हैं तो कहाः "महाराज ! भगवान ने हमें बहुत कुछ दिया है दहेज की आवश्यकता नहीं है। बस, चार कन्याएँ मिल गयीं न, मिथिलानरेश ने उन्नीस-बीस रखा हो तो भी क्या फर्क पड़ता है ?" यह सुनकर दशरथजी और गम्भीर हो गये। नेत्रों से आँसू झरने लगे।

'अपने कारण कोई रोये, पीड़ित हो यह अच्छा नहीं' - यह सोचकर कौशल्याजी राजा दशरथ से माफी माँगने लगीं- "महाराज ! मैंने पूछकर आपको दुःखी किया है, मुझे क्षमा करें।"

तब दशरथजी ने कहाः "जो अवसर मिथिलानरेश को मिला था, कन्यादान करके कन्याओं को विदा करने का, वह अवसर हमें कभी नहीं मिलेगा। मुझे तो चार बेटे ही हैं।" कौशल्याजी ने ढाढस बँधायाः "महाराज ! चार बहुएँ भी तो आपकी चार पुत्रियाँ ही हैं। इन्हें ही अपनी बेटियाँ मान लीजिये।" दशरथ जी ने कहाः "नहीं नहीं, कौशल्ये ! मिथिलानरेश ने अपनी बेटियों का बाल्यकाल से युवावस्था तक पालन-पोषण कर सुशिक्षित किया। विदाई के समय वे भी झर-झर आँसू बरसा रहे थे। कन्या को वर्षों तक पाल-पोसकर माँ-बाप जब उसकी विदाई करते हैं, तब उनके हृदय में कैसी व्यथा होती होगी, यह तो वे ही जानें ! उऩकी व्यथा याद करके मेरा हृदय व्यथित हो रहा है। 'दहेज कम मिला है' - ऐसा तो मुझे सपने में भी नहीं होता। दहेज देखकर खुश होने वाले और दहेज की कमी से दुःखी होने वाले लोग तो बहुत छोटी मति के होते हैं। कौशल्ये ! मुझे मिथिलानरेश की पीड़ा याद आती है, उससे मैं पीड़ित हो रहा हूँ।"

फिर बहुओं को बुलाकर दशरथजी ने उपदेश दिया। बाद में कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी गदगद कंठ से भावभरे शब्दों में बोलेः "पुत्रवधुएँ अपने माता-पिता, घर-परिवार, सहेलियों व स्नेहियों को छोड़कर तुम्हारे घर में आयी हैं। इन्हें यह जगह नयी लगती होगी। तुम लोग इनको कैसे रखोगी ?"

"महाराज ! हम इन्हें अपनी बेटियों की नाईं स्नेह से रखेंगे।"

तब महाराज ने बहुत भावभरा उपदेश दियाः

बधू लरिकनीं पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाईं।।

(बालकाण्डः 345.4)

बहुएँ अभी कम उम्र की हैं, पराये घर आयी हैं। इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलकें रखती हैं (जैसे पलकें नेत्रों की सब प्रकार से रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना)।

बहुओ ! तुम भी सासुओं को हृदय में ऐसे समा लेना कि सासुओं को लगे नहीं कि बहुएँ पराये घर की हैं।

सासु का कर्तव्य है कि बहुओं को अपने हृदय में, अपनी गोद में जगह दें। बहुओं का कर्तव्य है कि सास-ससुर को अपने दिल में जगह दे, सासु के दिल को जीत ले, सासु की अंतर्यामी बने। सासु का कर्तव्य है कि बहू की अंतर्यामी बने। पत्नी का कर्तव्य है कि पति की अंतर्यामी बने, मौसम के अनुरूप पति के लिए भोजन-छाजन आदि की व्यवस्था करे और पति का कर्तव्य है कि पत्नी के विकास का एक स्तम्भ बन जाय। यदि सास बहू की और बहू सास की अंतर्यामी बन जाय तो कुटुम्ब, कुल खानदान स्नेह से भरा रहेगा।

बिटिया ! लड़-झगड़ के, बिखर के क्यों अपनी शक्तियों का ह्रास करना ? बहुरानियाँ ! ससुराल में, कुटुम्ब में कुछ उन्नीस-बीस हो जाय, कभी सासु ने, ससुर ने या जेठ ने कुछ कह दिया और आपका मन उद्विग्न हो गया हो तो माँ या बाप को अथवा स्नेहियों को खबर करके उनको दुःख में क्यों डुबाना ? उस वक्त तुम्हारा जो मन था, थोड़ी देर के बाद वैसा नहीं रहेगा, बदल जायेगा परंतु वे लोग जब-जब तुम्हारी व्यथा को याद करेंगे, व्यथित होते रहेंगे।

तीनों रानियों और चारों बहुओं का हृदय भर गया। मानों स्नेह की सरिता में सब एक हो रहे हैं। सासुएँ अलग दिखती हैं, बहुएँ अलग दिखती हैं, कुटुम्बी अलग दिखते हैं किंतु अलग-अलग शरीरों में जो अलग नहीं है, उस परमात्मा की प्रेमधारा में सब एकाकार हो रहे हैं।

अयोध्या के सम्राट का, वशिष्ठजी के इस सत्शिष्य का कैसा सदुपदेश है ! क्या अपने घर में तुम ऐसी प्रेमधारा नहीं बहा सकते ?

ससुर का कर्तव्य है कि दशरथ जी की नाईं अपने कुल खानदान में आयी हुई बहुओं का सत्शिक्षण दे। सासु का कर्तव्य है कि बेटी और बहू में झगड़ा हुआ है तो बहू का थोड़ा पक्ष ले। जमाई और बेटी में 'तू-तू मैं-मैं' हो जाय तो जमाई का थोड़ा पक्ष ले। अपने वालों से न्याय, दूसरे से उदारता - यह दिलों को व कुटुम्ब को जोड़कर रखता है। दशरथजी ने परिवार को इतने बढ़िया ढंग से जोड़ा कि बड़ा हादसा हुआ, रामराज्य के बदले रामवनवास हुआ फिर भी परिवार अंदर से टूटा नहीं। सबने उस हादसे को सहन कर लिया। कौशल्याजी या सुमित्रा जी ने कैकेयी को खरी-खोटी नहीं सुनायी। सासु-बहू अथवा बहू-बहू या भाई-भाई आपस में लड़े नहीं। सबके हृदय में एक दूसरे के लिए सम्मान है। सबके हृदय में छुपे हुए हृदयेश्वर को देखते हुए कुटुम्ब के सभी लोग स्नेह से जीते रहे।

पवित्र आत्मा भरत को राज्य मिलता है पर वह राज्य का भोगी नहीं बनता। राम भैया को बुलाने जाता है। भैया नहीं आ रहे हैं तो उनकी चरणपादुकाएँ लाता है। पादुकाएँ सिंहासन पर हैं और स्वयं दास की नाईं प्रतिदिन उन पादुकाओं को प्रणाम करके भरत तपस्वी का जीवन बिताते हुए राज्य करते हैं। हे भारतीय संस्कृति ! कैसी है तेरी उदारता !

आप सुखी होने में वो मजा नहीं, जो औरों को सुखी रखने में है। इससे आपको परमात्म-सुख की प्राप्ति हो जायेगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जब सास बन गयी माँ

एक बुढ़िया का स्वभाव था कि जब तक वह किसी से लड़ न लेती, उसे भोजन नहीं पचता था। बहू घर में आयी तो बुढ़िया ने सोचा, 'अब घर में ही लड़ लो, बाहर किसलिए जाना ?' अब वह बात-बात पर बहू को जली-कटी सुनातीः "तुम्हारे बाप ने तुम्हें क्या सिखाया है ? माँ ने क्या यही शिक्षा दी है ? अरी, बोलती क्यों नहीं ? तेरे मुँह में जीभ नहीं है क्या ?"

बहू चुप साधे सुनती रहती और मुस्करा देती। पड़ोसी सुनकर सोचतेः 'यह कैसी सास है !'

बहू को चुप देख के सास कहतीः "अरी ! धरती पर पाँव पटकें तो भी धप की आवाज आती है और मैं इतना बोलती हूँ फिर भी तू चुप रहती है ?"

यह सब देखकर एक पड़ोसिन बोलीः "बुढ़िया ! लड़ने का इतना ही चाव है तो हमसे लड़ ले, तेरी इच्छा पूरी हो जायेगी। इस बेचारी गाय को क्यों सताती है ?"

तभी बहू ने पड़ोसिन को नम्रतापूर्वक कहाः "इन्हें कुछ मत कहो मौसी ! ये तो मेरी माँ हैं। माँ बेटी को नहीं समझायेगी तो और कौन समझायेगा ?"

सास ने यह बात सुनी तो पानी-पानी हो गयी। उस दिन से बहू को उसने अपनी बेटी मान लिया और झगड़ा करना छोड़कर प्रेम से रहने लगी।

यह बहू की सहनशक्ति, सास के प्रति सदभाव और मातृत्व की भावना का ही कमाल था कि उसने सास का स्वभाव बदल दिया।

सास-बहू के जोड़े में चाहे सास का स्वभाव थोड़ा ऐसा-वैसा हो चाहे बहू का, परंतु दूसरा पक्ष थोड़ा सूझबूझवाला, स्नेही हो तो समय पाकर उसका स्वभाव अवश्य बदल जाता है और घर का वातावरण मंगलमय हो जाता है।

हे भारत की माताओ-बहनो-देवियो ! आप अपने और परिवार के सदस्यों की जीवन-वाटिका को सुंदर-सुंदर सदगुणोंरूपी फूलों से महका सकती हो। आपमें ऐसा सामर्थ्य है कि आप चाहो तो घर को नंदनवन बना सकती हो और उन्नति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हो।

यदि सास-बहू में अनबन रहती हो तो सास और बहू का प्यार दर्शाती हुई तस्वीर घर में दक्षिण व पश्चिम दिशा के मध्य के कोने में लगा दें। धीरे-धीरे सास और बहू में प्यार बढ़ता जायेगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अपनों से न्याय, औरों से उदारता

घर के संघर्ष को मिटाओ। घर के संघर्ष रोग, कलह आदि को जन्म देते हैं। इनसे बचने के लिए प्रार्थना करनाः

हे प्रभु ! आनंददाता ! ज्ञान हमको दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये।।

घर में झूठ-कपट से प्रेम की कमी होती है और विकार पैदा होता है। निंदा से संघर्ष और ईर्ष्या से अशांति पैदा होती है। हमारा जो समय भगवद्ध्यान में जाना चाहिए वह निंदा, ईर्ष्या, झूठ-कपट में बरबाद हो जाता है। हमारी बड़े-में-बड़ी गलती होती है कि हम दूसरों के दोष देखते हैं। दूसरों पर नजर डालना ही बुरा है। अगर डालें तो उनके गुण पर ही डालें। अपने को ही सँवार लें, अपने तन-मन को बढ़िया बना लें - यह बहुत बड़ी सेवा है। आपका हृदय जल्दी निर्दोष हो जायेगा।

सुनहु तात माया कृत गुन अरू दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।
(रामचरित. उ.कां. 41)

दूसरों के दोष मत देखो। दूसरों की गहराई में परमेश्वर को देखो, अपनी गहराई में परमेश्वर को देखो, अपनी गहराई में परमेश्वर को देखो, उसे अपना मानो और प्रीतिपूर्वक स्मरण करो, फिर चुप हो जाओ तो भगवान में विश्रांति योग हो जायेगा। यह बहुत सरल है और बहुत-बहुत खजाना देता है।

जो प्रेम परमात्मा के नाते करना चाहिए वह प्रेम अगर मोह के नाते करते हो तो बदले में दुःख मिलता है, यह प्रकृति का नियम है। मैंने कई लोगों को देखा है जिन्होंने औरों से कपट करके भी अपने बेटों को पोसा है, उन्हीं के बेटों ने उन्हें खून के आँसू रूलाया है। जिन्होंने इधर-उधर करके अपनी पत्नी को खूब ऐश कराया है मैंने उनकी पत्नी के द्वारा ही उनको सहते देखा है। जिन्होंने अपने पति को भ्रष्टाचार में सहयोग दिया है उन्हीं के पति उनके खिलाफ हो गये। जिन्होंने अपने मित्रों को अन्य से कपट करके पोसा, मित्र उऩ्हीं के शत्रु हो गये।

जो माताएँ मोह में आकर अपने बेटों से प्यार और दूसरों के बच्चों से पक्षपात करती हैं उनके बेटे नालायक हो जाते हैं। अपने वाले से न्याय और दूसरों से उदारता कीजिये।

दो भाई थे। बड़ा भाई अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित था। चालाकी से सुखी होने की गड़बड़ में था। उसे धर्म का ज्ञान नहीं था। वह आम ले आया। दोनों भाइयों के बेटे बाहर खेल रहे थे। उसने दोनों बच्चों को बुलायाः "कम हियर (यहाँ आओ।)... देखो मैंगोऽऽऽऽ....।"

दोनों हाथों में एक-एक आम निकाला। जिस हाथ में बड़ा आम था वहाँ भाई का बेटा आ गया और जिसमें छोटा आम था वहाँ अपना बेटा आ गया। उसने बच्चों से कहाः "आँखें बन्द करो। मैं तुम्हें मैजिक (जादू) दिखाता हूँ।.... वन...टू...थ्री।"

बच्चों ने जैसे ही आँखें बन्द कीं, तुरंत जहाँ अपना बेटा था वहाँ बड़ा आम और जहाँ भाई का लड़का था वहाँ छोटा आम रख दिया।

छोटा भाई छत से सब देख रहा था। वह नीचे आया और बोलाः "भाई ! हम अलग हो जायें तो अच्छा है।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"मेरे जीते-जी तुम ऐसा जादू दिखा रहे हो, अपने बेटे को बड़ा आम देने के लिए मेरे बेटे से अन्याय कर रहे हो, मेरे मरने के बाद तो इसे फुटपाथ पर भेज दोगे। अब हम अलग हो जायें तो अच्छा है।"

व्यवहार में सुखी रहना हो तो अपने बच्चे को थप्पड़ मारी जा सकती है लेकिन पड़ोस के बच्चे को थप्पड़ मारने का अपना अधिकार नहीं है। पड़ोस के बच्चे को मिठाई दे सकते हैं। आँख दिखानी हो तो अपना बच्चा। पड़ोस के बच्चे के साथ उदारता का व्यवहार करना चाहिए। देवरानी-जेठानी के बच्चों को ज्यादा प्यार करो ताकि उनके हृदय में आपके लिए और आपके बच्चे के लिए प्यार पैदा हो।

हम क्या करते हैं ? अपने बेटे का पक्ष लेते हैं, देवरानी-जेठानी के बच्चे को आँख दिखाते हैं। फिर देवरानी-जेठानी के मन में भी वही भाव उभरता है और संघर्ष होता है। दो भाई अथवा दो माइयों की बेवकूफी के कारण प्रेम झगड़े में बदल जाता है और जीवन संघर्ष की उस आग में तपने लगता है।

अधिक धन से आपके बेटे-बेटियाँ सम्पन्न नहीं होंगे। उनको ज्ञान, भक्ति और भगवान की प्रीति से ही सम्पन्न करो, सुसंस्कार और सज्जनता से सम्पन्न करो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

घर-घर में बहे प्रेम की गंगा

मेरठ (उ.प्र.) में रामनारायण व जयनारायण नाम के दो भाई रहते थे। उनकी एक छोटी बहन थी - प्रेमा। उनके माता-पिता स्वर्गवासी हो गये थे। बड़े भाई रामनारायण जमींदार थे और छोटे भाई जयनारायण वकील बन गये थे।

रामनारायण व प्रेमा सत्संग, कीर्तन, प्रभुभक्ति में रुचि रखते थे तथा जयनारायण पाश्चात्य जीवनशैली से प्रभावित थे। प्रेमा जब विवाह योग्य हुई तब दोनों भाई उसके लिए सुयोग्य वर खोजने लगे। रामनारायण धर्मनिष्ठ व सच्चरित्रवान वर खोजने लगे। इसी बात को लेकर दोनों भाइयों में मनमुटाव हो गया। जयनारायण ने घर छोड़ दिया और अपनी पत्नी को लेकर दूसरे मोहल्ले में रहने लगे। रामनारायण ने प्रेमा का विवाह एक सच्चरित्र युवक के साथ कर दिया।

समय बीता। एक दिन प्रेमा ससुराल से अपने बड़े भाई के घर आयी हुई थी। एक शाम को वह झूला झूल रही थी कि जयनारायण किसी कार्यवश उधर से गुजरे। प्रेमा की जयनारायण की तरफ पीठ थी इसलिए वह भाई को देख नहीं पायी परंतु उन्होंने बहन को देख लिया। वकील बाबू ने सुना कि प्रेमा गा रही हैः

भगीरथ की प्रभुप्रीति तपस्या, गंगा धरती पे लायी।
घर-घर में बहे प्रेम की गंगा, रहे न कोई दिल खाली।।
हर दिल बने मंदिर प्रभु का, यदि गुरुज्ञान ज्योति जगा ली।
मेरे भैया दोनों नारायण, मैं हूँ ईश्वर की लाड़ली।।

वकील बाबू ने सोचा, 'जिसे मैंने भुला दिया था, वह मुझे अब भी स्मरण कर रही है !'

बात हृदय को चोट कर गयी। वे बहन और भाई के लिए तड़पने लगे। आखिर संस्कारी खानदान का खून रगों में था ! अपनी भूल के लिए पश्चाताप करते हुए जयनारायण उदास रहने लगे। खाने पीने से भी उनकी वृत्ति हट गयी। उद्‌विग्नता अत्यंत बढ़ने के कारण एक दिन उन्हें तेज बुखार हो गया।

एक हफ्ते बाद प्रेमा ने सुना कि जयनारायण बहुत बीमार हैं। वह बड़े भाई के कमरे में गयी और बोलीः "छोटे भैया बहुत बीमार हैं।"

"मुझे पता है तुम उससे मिलने जाना चाहती हो लेकिन प्रेमा ! वहाँ तुम्हें व्यर्थ ही अपमानित होना पड़ेगा यह पहले ही समझ लेना।"

"भैया ! मान-अपमान आया-जाया करता है पर अपनी संस्कृति का 'हृदय की विशालता' व मिल-जुलकर रहने का सिद्धान्त शाश्वत है। आप ही तो गाया करते हैं-

सत्य बोलें झूठ त्यागें मेल आपस में करें।
दिव्य जीवन हो हमारा यश 'तेरा' [1] गाया करें।।"

1. **प्रभु का**

"शाबाश ! तुम्हारे विचारों की सुवास जयनारायण के घर को भी महकायेगी।"

जयनारायण के घर पहुँचकर प्रेमा ने देखा कि वे पलंग पर बेहोश पड़े हैं। एक ओर रमा भाभी खड़ी है व दूसरी ओर डॉक्टर खड़े हैं।

डॉक्टरः "इनके शरीर में रक्त की बहुत कमी हो गयी है, नसें तक दिखायी दे रही हैं।"

रमाः "कुछ भी खाते-पीते नहीं हैं। कभी-कभी बस इतना ही कह उठते हैं- मेरे भैया दोनों नारायण, मैं हूँ ईश्वर की लाड़ली।।"

"यह सन्निपात का लक्षण है।"

"डॉक्टर साहब ! मेरे पास जो कुछ है सब ले लीजिये परंतु इनके प्राण बचा लीजिये।"

"प्राण बचाना परमात्मा के हाथ में है। डॉक्टर का काम कोशिश करना है। इन्हें तत्काल खून चढ़ाना पड़ेगा।"

"मेरा खून ले लीजिये।"

"आप गर्भवती हैं, आपका खून लेना ठीक नहीं।"

"डॉक्टर साहब ! मैं स्वस्थ हूँ, मेरा खून ले लीजिये !" - दरवाजे में खड़ी प्रेमा बोल उठी।

रमाः "नहीं प्रेमा ! आप रहने दीजिये।"

"क्यों भाभी ?"

"हमने आपसे बहुत गलत व्यवहार किया है। आपकी शादी में भी हम लोग शामिल नहीं हुए थे और एक पैसा भी हमने खर्च नहीं किया। आप हमसे नाराज नहीं हैं ?"

"बहन का आदर्श यह नहीं है कि वह किसी भूल के कारण अपने भाई से सदा के लिए नाराज हो जाय। मेरे गुरुदेव कहते हैं-

बीत गयी सो बीत गयी, तकदीर का शिकवा कौन करे।

जो तीर कमान से निकल गया, उस तीर का पीछा कौन करे।।"

डॉक्टर ने प्रेमा का रक्त समूह जाँचकर खून ले लिया और वकील साहब को चढ़ा दिया।

एक हफ्ते में ही जयनारायण स्वस्थ हो गये। वे रामनारायण के घर आये। तब प्रेमा वहीं थी। जयनारायण ने बड़े भाई के चरणों पर अपना सिर रख दिया व सिसक-सिसक कर रोने लगे। रामनारायण ने उन्हें उठाया और छाती से लगा लिया। सभी की आँखों से प्रेमाश्रु बरसने लगे।

"भाई साहब ! मुझे क्षमा कर दीजिये। मुझे अपने घर में रहने की अनुमति दीजिये।"

"अनुमति ?.... यह तुम्हारा ही घर है।"

"भैया ! आप पिताजी के समान हैं। आपने मुझे पढ़ाया-लिखाया, योग्य बनाया है और मैंने...."

"दुःखी मत होओ। सुबह का भूला शाम को घर लौट आये तो उसे भूला नहीं कहते। तुम आज ही यहाँ आ जाओ।"

"प्रेमा ! मेरी हिम्मत नहीं होती कि तुम्हारी नजर से नजर मिला सकूँ। मैं भाई का आदर्श भूल गया परंतु तुम बहन का आदर्श नहीं भूली।"

"हिंदू संस्कृति व संतों के अनुसार बहन का जो आदर्श है, उसी का मैंने पालन किया है। यह तो मेरा कर्तव्य ही था। यदि तारीफ करनी ही है तो मेरी नहीं, अपनी संस्कृति व संतों की करो।"

दूसरे दिन जयनारायण अपनी पत्नीसहित उस घर में लौट आये। सत्संग के संस्कारों ने, संस्कृति के आदर्शों ने टूटे हुए दिलों को प्रेम की डोर से जोड़ दिया।

हे भारत की धरा ! हे ऋषिभूमि ! तेरे कण-कण में अभी भी कितने पावन संस्कार हैं ! हे भारतवासियो ! हे दिव्य संस्कृति के सपूतो ! आप अपने महापुरुषों के स्नेह के, हृदय की विशालता के संस्कारों को मत भूलो। ये संस्कार घर-घर में, दिल-दिल में प्रेम की गंगा प्रकटाने का सामर्थ्य रखते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

खाया बासी और बन गये उपवासी

एक धनाढय सेठ था, पर था बड़ा कंजूस स्वभाव का। दान-पुण्य के लिए तो उसका हाथ कभी खुलता ही न था। उसके घर जो पुत्रवधू आयी वह बड़े कुलीन और सत्संगी घराने की थी। घर के संस्कारी माहौल और सत्संग में जाने के कारण बचपन से ही उसके स्वभाव में बड़े-बुजर्गों की सेवा, साधु-संतों का स्वागत-सत्कार, सत्संग सुनना, दान-दक्षिणा देना आदि उच्च संस्कार आत्मसात् हो गये थे। वह व्यर्थ खर्च के तो खिलाफ थी परंतु अच्छे कार्यों में, लोक-मांगल्य के कार्यों में पैसे खर्चने में हिचक नहीं रखनी चाहिए, ऐसी उसकी ऊँची मति थी। ससुरजी की कंजूसी भरी रीति-नीति उसे पसंद न आयी। वह प्रयत्नशील रहती कि ससुर जी का लोभी-लालची मन उदार व परोपकारी बने।

एक दिन सेठजी घर पर ही थे। बहू पड़ोसन से बातें कर रही थी। पड़ोसन ने पूछाः "क्यों बहना ! आज खाने में क्या-क्या बनाया था ?"

तब बहू ने कहाः "बहन ! आज कहाँ रसोई बनायी, हमने तो खाया बासी और बन गये उपवासी।"

बहू के ये शब्द ससुरजी के कानों में पड़े तो वे चौंके और अपनी पत्नी पर बिगड़ पड़े कि "ठीक है, मैं कंजूस हूँ, परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि मेरी समाज में कोई इज्जत ही नहीं है। तुमने बहू को बासी अन्न खिला दिया। अब वह तो सारे मुहल्ले में मेरी कंजूसी का ढिंढोरा पीट रही है।"

सेठानी ने कहाः "मैंने कभी बहू को बासी खाना दिया ही नहीं है। मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ कि इतना भी न जानूँ।" सेठ ने बहू को बुलाकर पूछाः "बेटी ! तुमने तो आज ताजा भोजन किया है। फिर पड़ोसन से झूठ क्यों कहा कि खाया बासी और बन गये उपवासी ?"

"ससुर जी ! मैंने झूठ नहीं कहा बल्कि सौ प्रतिशत सत्य कहा है।"

बुद्धिमान बहू ने नम्रतापूर्ण स्वर में मैं सत्य समझाते हुए कहाः "जरा सोचिये, ससुर जी ! आज हमारे पर धन-दौलत है, जिससे हम खूब सुख-सुविधाओं में आनंद से रह रहे हैं। यह वास्तव में हमारे पूर्वजन्म के पुण्य कर्मों का ही फल है। इसलिए आज हम जो सुख भोग रहे हैं, वह सब बासी आहार के समान है अर्थात् हम बासी खा रहे हैं और जो धन हमें मिला है उससे दान, पुण्य, धर्म या परोपकार के कार्य तो कर नहीं रहे हैं। अतः अगले जन्म के लिए तो हमने कुछ पुण्य-पूँजी सँजोयी नहीं है। इसलिए अगले जन्म में हमें उपवास करना पड़ेगा। अब आप ही बताइये, क्या मेरा वचन सत्य नहीं है ?"

बहू की युक्तिपूर्ण सुंदर सीख सुनकर सेठ की बुद्धि पर से लोभ का पर्दा हट गया, सदज्ञान का प्रकाश हुआ और वे गदगद स्वर से बोलेः "मैं धन्य हुआ जो तुझ जैसी सत्संगी की सुपुत्री मेरे घर की लक्ष्मी बनी। बेटी ! तूने आज मुझे जीवन जीने की सही राह दिखायी है।"

फिर तो सेठ जी ने दान-पुण्य की ऐसी सरिता प्रवाहित की कि दान का औदार्य-सुख, आत्मसंतोष, उज्जवल भविष्य और परोपकारिता का मंगलमय सुस्वभाव उन्हें प्राप्त हो गया, जिसके आगे धन-संग्रह एवं सुख-सुविधा का बाह्य सुख उन्हें तुच्छ लगने लगा। परोपकार से प्राप्त होने वाली आंतरिक प्रसन्नता और प्रभुप्राप्ति ही सार है यह उनकी समझ में आ गया।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ससुराल की रीति

एक लड़की विवाह करे ससुराल आयी। ससुराल में उसकी दादी सास भी थी। लड़की ने देखा कि दादी सास का बड़ा अपमान तिरस्कार हो रहा है। सास उनको ठोकरें मारती है, अपशब्द सुनाती रहती है, बहुत दुःख देती है। यह देखकर उस लड़की को बुरा लगा और दया भी आयी। उसने विचार किया कि 'अगर मैं अपनी सास से कूहँ कि आप अपनी सास का तिरस्कार मत किया करो तो वे कहेंगी कि कल की छोकरी आकर मेरे को उपदेश देती है, गुरु बनती है। ' अतः उसने अपनी सास से कुछ नहीं कहा। उसने एक उपाय सोचा।

वह रोज अपना कामकाज निपटाकर दादी सास के पास जाकर बैठ जाती और उनके पैर दबाती। जब वह वहाँ ज्यादा बैठने लगी तो सास को यह सुहाया नहीं। एक दिन सास ने उससे पुछाः "बहू ! वहाँ क्यों जा बैठती है ?"

लड़की बोलीः "मेरे माता-पिता ने कहा था कि 'जवान लड़कों के साथ तो कभी बैठना ही नहीं, जवान लड़कियों के साथ भी कभी मत बैठना, जो घर में बड़े-बूढ़े हों, उनके पास बैठना, उनसे शिक्षा लेना।' घर में सबसे बूढ़ी दादी माँ ही हैं इसलिए मैं उनके पास ही बैठती हूँ।

माता-पिता ने यह भी कहा था कि 'वहाँ हमारे घर के रीति-रिवाज नहीं चलेंगे, वहाँ तो तेरी ससुराल के रिवाज चलेंगे। बड़े-बूढ़ों से वहाँ के रीति-रिवाज सीखकर वैसा ही व्यवहार करना। ' माँजी ! मुझे यहाँ के रिवाज सीखने हैं। दादी माँ सबसे बुजुर्ग हैं इसलिए मैं उनसे पूछती हूँ कि मेरी सासुजी आपकी सेवा कैसे करती है ताकि मैं भी वैसे ही करूँ।"

सास ने पूछाः "बुढ़िया क्या कहती है ?"

"दादी जी कहती हैं कि यह मुझे ठोकर नहीं मारे, गाली नहीं दे, बस इतना ही करे तो मैं अपनी सेवा मान लूँ।"

सास बोलीः "क्या ! तू भी मेरे साथ ऐसा ही करेगी ?"

"मैं ऐसा नहीं कर सकती माँजी ! लेकिन क्या यहाँ के रिवाज ऐसे ही हैं ?"

सास चुप हो गयी और भीतर से डरने लगी कि मैं अपनी सास के साथ जो बर्ताव करूँगी, वही बर्ताव मेरे साथ होने लगेगा।

एक जगह कोने में ठीकरे इकट्ठे पड़े थे। सास ने पूछाः "बहू ! ये ठीकरे क्यों इकट्ठे किये हैं ?"

लड़की ने कहाः "आप दादी जी को रोज ठीकरे में भोजन दिया करती हैं। तो यहाँ के रिवाज के अनुसार मैंने पहले से ही जमा करके रखे हैं। ठीक किया न मैंने ?"

"अरे ! क्या ठीक किया ? यह रिवाज थोड़े ही है !"

"तो फिर आप दादी माँ को ठीकरे में भोजन क्यों देती हैं ?"

"थाली कौन माँजे ?"

"माँजी ! थाली तो मैं माँज दूँगी।"

"ठीक है तो तू थाली में भोजन दे दिया कर, ठीकरे उठाकर बाहर फेंक दे।"

अब बूढ़ी माँजी को थाली में भोजन मिलने लगा। सबको भोजन देने के बाद जो बाकी बचे वह या फिर खिचड़ी की खुरचन, कंकड़वाली दाल बूढ़ी माँ जी को दी जाती थी। लड़की उसको हाथ में लेकर देखने लगी। सास ने पूछाः बहू क्या देखती है ?"

माँजी ! मैं देखती हूँ कि यहाँ बड़ों को कैसा भोजन दिया जाता है।"

"ऐसा भोजन देने की रीत थोड़े ही है !"

"तो फिर आप ऐसा भोजन क्यों देती हैं ?"

"पहले भोजन कौन दे ?"

"आप आज्ञा दें तो मैं दे दूँगी।"

"ठीक है तो तू पहले भोजन दे दिया कर।"

अब बूढ़ी माँजी को बढ़िया भोजन मिलने लगा। रसोई बनते ही बहू ताजी खिचड़ी, ताजा फुलका, दाल-साग ले जाकर बूढ़ी माँजी को दे देती। दादी सास तो मन-ही-मन बहू को आशीर्वाद देने लगीं।

वह बूढ़ी दादी सास दिन भर एक खटिया पर पड़ी रहती थी। खटिया टूट गयी थी। उसकी मूँज नीचे लटकती रहती थी। बहू उस खटिया को देख रही थी। सास बोलीः "बहू क्या देखती हो ?"

"देखती हूँ कि बड़ों को कैसी खाट दी जाय ?"

"ऐसी खाट थोड़े ही दी जाती है ! यह तो टूट जाने से ऐसी हो गयी।"

"तो आप दूसरी क्यों नहीं बिछा देतीं ?"

"तू बिछा दे दूसरी।"

अब माँजी के लिए निवार की खाट लाकर बिछा दी गयी। दादी माँ के कपड़े छलनी हो गये थे। एक दिन कपड़े धोते समय वह लड़की दादी माँ के कपड़े घूरकर देखने लगी। सास ने पूछाः "क्या देखती हो ?"

"देखती हूँ कि यहाँ बूढ़ों को कपड़ा कैसा दिया जाता है।"

"फिर वही बात, ऐसा कपड़ा थोड़े ही दिया जाता है, यह तो पुराना होने पर ऐसा हो जाता है।"

"तो फिर क्या यही कपड़ा रहने दें ?"

"तू बदल दे।"

अब बहू ने बूढ़ी माँजी के कपड़े, चादर, बिछौना आदि सब बदल दिया। उसकी चतुराई से बूढ़ी माँजी के जीवन में भी खुशहाली छा गयी। अगर वह लड़की सास को कोरा उपदेश देती तो क्या वह उसकी बात मान लेती ? नहीं, बातों का असर नहीं पड़ता, आचरण का असर पड़ता है। इसलिए बहुओं को चाहिए कि वे अपनी ससुराल में ऐसी बुद्धिमानी से सेवा करें और घर में सबको राजी रखें। इससे घर में सुख शांति बनी रहेगी। आपसी मनमुटाव से घर में सुख-शांति नहीं रहती। सुख-शांति तो **परस्परं भावयन्तु... संगच्छध्वं संवदध्वं...** एक दूसरे के साथ मिलकर चलो, मिलकर रहो और एक दूसरे के लिए पूर्णरूप से सहायक बनो - इस सिद्धान्त में है। इसी में घर-परिवार, समाज और देश का मंगल है, कल्याण है। भारतीय संस्कृति के जो इतने दिव्य, उच्च आदर्श हैं, प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह उनका पालन करे और उन्हें अपने जीवन में लाये, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी अवस्था से ऊँचा उठे और समाज व देश के उद्धार में, सुख शांति में सहायक बने। अपना छुपा हुआ आत्मरस जागृत करे। अपने सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनंदस्वरूप आत्मस्वभाव जागृत करने में सफल बने। राग-द्वेष, ईर्ष्या, निंदा, घृणा इस चांडाल-चौकड़ी से हम भी बचें, हमारे सम्पर्कवालों को भी युक्ति से बचायें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सच्ची क्षमा

ई.स. 1956 के आसपास की घटना है। एक तहसीलदार थे। उनका गृहस्थ-जीवन बड़ा दुःखमय था क्योंकि उनकी धर्मपत्नी ठीक समय पर भोजन नहीं बना पाती थी, जिस कारण उन्हें कार्यालय पहुँचने में अक्सर बहुत देर हो जाती थी। उन्होंने पत्नी को हर तरह से समझाया। कई बार कठोर व्यवहार भी किया, मारपीट भी की लेकिन पत्नी की गलती में सुधार होने के बजाय गलती बढ़ती ही गयी। वे इतने परेशान हो गये कि उनके मन में विचार आता, 'यह घर छोड़कर चला जाऊँ या पत्नी को तलाक दे दूँ अथवा तो इसकी हत्या कर दूँ या खुद आत्महत्या

कर लूँ।' उनकी मानसिक परेशानी चरम सीमा पर पहुँच गयी, घर श्मशान की तरह लगने लगा, नींद आऩी बंद हो गयी, शारीरिक रोग सताने लगे।

प्रभुकृपा से एक बार वे किन्हीं संत के पास गये। भारी हृदय और बहले आँसुओं से उन्होंने अपनी इस पारिवारिक समस्या को संतश्री के सामने रखा। संत करूणा बरसाते हुए हँसकर बोलेः "यह तो कोई समस्या ही नहीं है, अभी हल कर देते हैं ! चलो, कल तुम्हारी पत्नी यदि समय पर भोजन न बनाये तो तुम सुबह चुपचाप भूखे पेट ही कार्यालय चले जाना। सावधान ! न वाणी से, न आँखों से, न हाथों से, न पैरों से और न व्यवहार से कुछ बोलना। मन व हृदय से भी कुछ मत बोलना, चुपचाप चले जाना, भूख लगे तो कार्यालय में ही कुछ खा लेना। अभी तो 'हरि ॐ शांति, हरि ॐ शांति... ॐ उदारता.... ' - ऐसा चिंतन करो। जो समस्याओं को हर ले और अपने शांत स्वभाव को हमारे चित्त में भर दे, उसे प्रीतिपूर्वक पुकारो। हरि ॐ शांति, हरि ॐ शांति...

बहुत गयी थोड़ी रही, व्याकुल मन मत होय।
धीरज सबका मित्र है, करी कमाई मत खोय।।

इस चिंतन में चित्त को शांत और प्रसन्न रखना। तीन-चार दिन तक ऐसे ही करना।"

तहसीलदार ने पूछाः "महाराज ! वाणी से नहीं बोलूँगा लेकिन आँख, हाथ, पैर, व्यवहार, हृदय व मन से न बोलने का क्या अर्थ है ?"

संत ने उत्तर दियाः "मन से उसे बुरा मत समझना, मन से उस पर क्रोध मत करना, वाणी से उसे डाँटना मत, आँख मत दिखाना, हाथों से मारना मत, पैर पटकते हुए क्रोधित होकर मत जाना, व्यवहार से क्रोध का संकेत मत देना और हृदय में यह भाव रखना कि मुझे जो दुःख हुआ, उसका कारण तो मेरी ही भूल है। इसमें पत्नी की लेशमात्र भी गलती नहीं है, मैंने व्यर्थ ही उसे दुःख दिया, वह तो करूणा की पात्र है। प्रभु ! मुझे क्षमा करना, अब आप ही उसे सँभालना।"

संत के मुख से इन वाक्यों के श्रवणमात्र से उनका दहकता हुआ हृदय कुछ शांत हुआ, मानो जलते हुए घावों पर किसी ने चंदन लगा दिया हो। संयोग की बात, अगले दिन फिर पत्नी ने समय पर भोजन नहीं बनाया। तहसीलदार ने संत के परामर्श का स्मरण किया। अंदर बाहर एकदम शांत रहकर चुपचाप कार्यालय के लिए रवाना हो गये।

पत्नी पर तत्काल प्रभाव पड़ा। हृदय में भाव आया, 'आज वे चुपचाप चले गये, कुछ नहीं बोले। दिन भर भूखे रहेंगे, भोजन बनाने का कार्य तो मेरा है। मैं अपना कार्य समय पर नहीं कर पायी। मैं कैसी पत्नी हूँ, मैंने कितनी बार यह भूल की है। ' पत्नी की भूल का एहसास हुआ। पश्चाताप के आँसू बहने लगे, हृदय से उसने पतिदेव से क्षमा माँगी और व्रत लिया कि 'अब मैं ठीक समय पर भोजन बनाऊँगी।'

पति कार्यालय में बैठे हैं। पत्नी के हृदय की भाव-लहरियाँ तत्काल उनके हृदय तक पहुँच गयी। उनके हृदय में भाव आया, 'मैं कैसा पति हूँ, एक मामूली-सी भूल के लिए मैं सदा अपनी जीवनसंगिनी का अपमान करता हूँ। मैंने उसे कभी प्रेम से नहीं समझाया। अगर मैं प्रेम से समझाता तो क्या वह भूल करती ? प्रेम से तो पशु भी वश हो जाते हैं।' पति को अपनी भूल का एहसास हुआ। पश्चाताप की अग्नि में उनके दोष, खिन्नता जल गयी। कार्यालय में बैठे बैठे ही उन्होंने मन-ही-मन पत्नी से क्षमा माँग ली और व्रत लिया, 'अब मैं ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा। आज घर पहुँचते ही सबसे पहले उससे क्षमायाचना करूँगा। फिर उसकी पसंद का भोजन बनवाकर उसे खिलाऊँगा, अपनी पसंद के भोजन के लिए पत्नी को कभी नहीं कहूँगा।'

पति के हृदय की भाव-लहरियाँ पत्नी के हृदय तक पहुँचीं। विचार आया, 'मेरे पति मेरे सर्वस्व हैं। वे भूखे हैं। आज उनके आते ही मैं उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगूगी, उनके लिए भोजन बनाकर तैयार रखूँगी। उन्हें प्रेम से भोजन कराऊँगी। आज से मैं उन्हीं की पसंद का भोजन बनाया करूँगी। अब से पति की पसंद ही मेरी पसंद होगी।'

शाम हो गयी, पति के घर आने का समय हो गया। पत्नी से भोजन तैयार कर लिया। पति की प्रतीक्षा कर रही है, मन प्रेम व प्रसन्नता से भरा है। ज्यों ही पति ने दरवाजा खटखटाया, पत्नी ने खोला। तत्काल चरणों में गिर पड़ी, भरे कंठ से आवाज निकलीः "क्षमा कीजिये।" लेकिन पति भी पूरे सावधान थे। चरणों में गिरने से पहले ही पत्नी को उठा लिया, हृदय प्रेम से भर गया, धीमा स्वर निकलाः "मैंने तुम्हें सच्चा प्रेम नहीं दिया, दुःख दिया, अपमान किया। मुझे माफ करना। " दोनों के हृदयों में पवित्र प्रेम, आँखों में प्रेमाश्रु, शरीर पुलकित.....सारा वातवरण प्रेम से परिपूर्ण हो गया। जीवन में आज पहली बार दोनों ने प्रेम से भोजन किया।

तहसीलदार ने बताया कि उस दिन के बाद पत्नी से वह भूल कभी नहीं हुई। बहुत बार ऐसा भी हुआ कि मन में आया, 'आज अमुक-अमुक सब्जियाँ बननी चाहिए। ' पत्नी को नहीं बताया लेकिन भोजन करने बैठे तो वे सारी सब्जियाँ थाली में थीं। पत्नी को पति के हृदय के भावों का बिना बताये पता चल जाता। यह है सच्ची क्षमा का विलक्षण सुपरिणाम !

क्षमा आपको सच्ची शांति प्रदान करती है। शांति व सुख का आधार सांसारिक व्यक्ति और वस्तुएँ नहीं हैं क्योंकि संसार के व्यक्तियों व वस्तुओं के संयोग से आपको जो लौकिक सुख मिलता है वह उन व्यक्तियों व वस्तुओं के बिछुड़ने पर समाप्त होकर भयंकर दुःख व अशांति में बदल जाता है। शांति तो मिलती है सेवा, त्याग, प्रेम, विश्वास, क्षमा व विवेक के आदर से। जिसके जीवन में ये सब अलौकिक तत्त्व हैं, उसका विवेक जागता है, वैराग्य जगता है। 'दुःख और सुख मन की वृत्ति है, राग-द्वेष बुद्धि में है। दोनों को जानने वाला मैं कौन हूँ ?' - सदगुरु की कृपा से इसकी खोज कर आत्मा परमात्मा की एकता का अनुपम अनुभव करके वह जीवन्मुक्त हो जाता है। जो आनंद भगवान ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्राप्त है, उसी आत्मा

के आनंद को वह भक्त पा लेता है। विवेक से मनुष्य जब इतनी ऊँचाई को छू सकता है तो नाहक परेशानी, पाप और विकारों में पतित जीवन क्यों गुजारना !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

लूट मची, खुशहाली छायी

एक धनी सेठ के सात बेटे थे। छः का विवाह हो चुका था। सातवीं बहू आयी, वह सत्संगी माँ-बाप की बेटी थी। बचपन से ही सत्संग में जाने से सत्संग के सुसंस्कार उसमें गहरे उतरे हुए थे। छोटी बहू ने देखा कि घर का सारा काम तो नौकर चाकर करते हैं, जेठानियाँ केवल खाना बनाती हैं उसमें भी खटपट होती रहती है। बहू को सुसंस्कार मिले थे कि अपना काम स्वयं करना चाहिए और प्रेम से मिलजुल कर रहना चाहिए। अपना काम स्वयं करने से स्वास्थ्य बढ़िया रहता है।

उसने युक्ति खोज निकाली और सुबह जल्दी स्नान करके, शुद्ध वस्त्र पहनकर पहले ही रसोई में जा बैठी। जेठानियों ने टोका लेकिन फिर भी उसने बड़े प्रेम से रसोई बनायी और सबको प्रेम से भोजन कराया। सभी बड़े तृप्त व प्रसन्न हुए।

दिन में सास छोटी बहू के पास जाकर बोलीः "बहू ! तू सबसे छोटी है, तू रसोई क्यों बनाती है ? तेरी छः जेठानियाँ हैं।"

बहूः "माँजी ! कोई भूखा अतिथि घर आ जाय तो उसको आप भोजन क्यों कराते हो ?"

"बहू ! शास्त्रों में लिखा है कि अतिथि भगवान का स्वरूप होता है। भोजन पाकर वह तृप्त होता है तो भोजन कराने वाले को बड़ा पुण्य मिलता है।"

"माँजी ! अतिथि को भोजन कराने से पुण्य होता है तो क्या घरवालों को भोजन कराने से पाप होता है ? अतिथि में भगवान का स्वरूप है तो घर के सभी लोग भी तो भगवान का स्वरूप है क्योंकि भगवान का निवास तो जीवमात्र में है। और माँजी ! अन्न आपका, बर्तन आपके सब चीजें आपकी हैं, मैं जरा सी मेहनत करके सबमें भगवदभाव रखके रसोई बनाकर खिलाने की थोड़ी-सी सेवा कर लूँ तो मुझे पुण्य होगा कि नहीं होगा ? सब प्रेम से भोजन करके तृप्त होंगे, प्रसन्न होंगे तो कितना लाभ होगा ! इसलिए माँजी ! आप रसोई मुझे बनाने दो। कुछ मेहनत करूँगी तो स्वास्थ्य भी बढ़िया रहेगा।"

सास ने सोचा कि 'बहू बात तो ठीक कहती है। हम इसको सबसे छोटी समझते हैं पर इसकी बुद्धि सबसे अच्छी है।'

दूसरे दिन सास सुबह जल्दी स्नान करके रसोई बनाने बैठ गयी। बहुओं ने देखा तो बोलीं- "माँजी ! आप परिश्रम क्यों करती हो ?"

सास बोलीः "तुम्हारी उम्र से मेरी उम्र ज्यादा है। मैं जल्दी मर जाऊँगी। मैं अभी पुण्य नहीं करूँगी तो फिर कब करूँगी ?"

बहुएँ बोलीं- "माँजी ! इसमें पुण्य क्या है ? यह तो घर का काम है।"

सास बोलीः "घर का काम करने से पाप होता है क्या ? जब भूखे व्यक्तियों को, साधुओं को भोजन कराने से पुण्य होता है तो क्या घरवालों को भोजन कराने से पाप होता है ? सभी में ईश्वर का वास है।"

सास की बातें सुनकर सब बहुओं को लगा कि 'इस बात का तो हमने कभी ख्याल ही नहीं किया। यह युक्ति बहुत बढ़िया है !' अब जो बहू पहले जग जाय वही रसोई बनाने बैठ जाये। पहले जो भाव था कि 'तू रसोई बना....' तो छः बारी बँधी थीं लेकिन अब 'मैं बनाऊँ, मैं बनाऊँ...' यह भाव हुआ तो आठ बारी बँध गयीं। दो और बढ़ गये सास और छोटी बहू। काम करने में 'तू कर, तू कर....' इससे काम बढ़ जाता है और आदमी कम हो जाते हैं पर 'मैं करूँ, मैं करूँ....' इससे काम हलका हो जाता है और आदमी बढ़ जाते हैं।

छोटी बहू उत्साही थी, सोचा कि 'अब तो रोटी बनाने में चौथे दिन बारी आती है, फिर क्या किया जाय ?' घर में गेहूँ पीसने की चक्की पड़ी थी, उसने उससे गेहूँ पीसने शुरु कर दिये। मशीन की चक्की का आटा गर्म-गर्म बोरी में भर देने से जल जाता है, उसकी रोटी स्वादिष्ट नहीं होती लेकिन हाथ से पीसा गया आटा ठंडा और अधिक पौष्टिक होता है तथा उसकी रोटी भी स्वादिष्ट होती है। छोटी बहू ने गेहूँ पीसकर उसकी रोटी बनायी तो सब कहने लगे की 'आज तो रोटी का जायका बड़ा विलक्षण है !'

सास बोलीः "बहू ! तू क्यों गेहूँ पीसती है ? अपने पास पैसों की कमी नहीं है।"

"माँजी ! हाथ से गेहूँ पीसने से व्यायाम हो जाता है और बीमारी नहीं आती। दूसरा, रसोई बनाने से भी ज्यादा पुण्य गेहूँ पीसने का है।"

सास और जेठानियों ने जब सुना तो लगा कि बहू ठीक कहती है। उन्होंने अपने-अपने पतियों से कहाः 'घर में चक्की ले आओ, हम सब गेहूँ पीसेंगी।' रोजाना सभी जेठानियाँ चक्की में दो ढाई सेर गेहूँ पीसने लगीं।

अब छोटी बहू ने देखा कि घर में जूठे बर्तन माँजने के लिए नौकरानी आती है। अपने जूठे बर्तन हमें स्वयं साफ करने चाहिए क्योंकि सबमें ईश्वर है तो कोई दूसरा हमारा जूठा क्यों साफ करे !

अगले दिन उसने सब बर्तन माँज दिये। सास बोलीः "बहू ! विचार तो कर, बर्तन माँजने से तेरा गहना घिस जायेगा, कपड़े खराब हो जायेंगे...।"

"माँजी ! काम जितना छोटा, उतना ही उसका माहात्म्य ज्यादा। पांडवों के यज्ञ में भगवान श्रीकृष्ण ने जूठी पत्तलें उठाने का काम किया था।"

दूसरे दिन सास बर्तन माँजने बैठ गयी। उसको देख के सब बहुओं ने बर्तन माँजने शुरु कर दिये।

घर में झाड़ू लगाने नौकर आता था। अब छोटी बहू ने सुबह जल्दी उठकर झाड़ू लगा दी। सास ने पूछाः "बहू ! झाड़ू तूने लगायी है ?"

"माँजी ! आप मत पूछिये। आपको बोलती हूँ तो मेरे हाथ से काम चला जाता है।"

"झाड़ू लगाने का काम तो नौकर का है, तू क्यों लगाती है ?"

"माँजी ! 'रामायण' में आता है कि वन में बड़े-बड़े ऋषि-मुनि रहते थे लेकिन भगवान उनकी कुटिया में न जाकर पहले शबरी की कुटिया में गये। क्योंकि शबरी रोज चुपके-से झाड़ू लगाती थी, पम्पासर का रास्ता साफ करती थी कि कहीं आते-जाते ऋषि-मुनियों के पैरों में कंकड़ न चुभ जायें।"

सास ने देखा कि यह छोटी बहू तो सबको लूट लेगी क्योंकि यह सबका पुण्य अकेले ही ले लेती है। अब सास और सब बहुओं ने मिलके झाड़ू लगानी शुरू कर दी।

जिस घर में आपस में प्रेम होता है वहाँ लक्ष्मी बढ़ती है और जहाँ कलह होता है वहाँ निर्धनता आती है। सेठ का तो धन दिनोंदिन बढ़ने लगा। उसने घर की सब स्त्रियों के लिए गहने और कपड़े बनवा दिये। अब छोटी बहू ससुर से मिले गहने लेकर बड़ी जेठानी के पास गयी और बोलीः "आपके बच्चे हैं, उनका विवाह करोगी तो गहने बनवाने पड़ेंगे। मेरे तो अभी कोई बच्चा है नहीं। इसलिए इन गहनों को आप रख लीजिये।"

गहने जेठानी को देकर बहू ने कुछ पैसे और कपड़े नौकरों में बाँट दिये। सास ने देखा तो बोलीः "बहू ! यह तुम क्या करती हो ? तेरे ससुर ने सबको गहने बनवाकर दिये हैं और तूने वे जेठानी को दे दिये और पैसे, कपड़े नौकरों में बाँट दिये !"

"माँजी ! मैं अकेले इतना संग्रह करके क्या करूँगी ? अपनी वस्तु किसी जरूरतमंद के काम आये तो आत्मिक संतोष मिलता है और दान करने का तो अमिट पुण्य होता ही है !"

सास को बहू की बात लग गयी। वह सेठ के पास जाकर बोलीः "मैं नौकरों में धोती-साड़ी बाँटूगी और आसपास में जो गरीब परिवार रहते हैं उनके बच्चों को फीस मैं स्वयं भरूँगी। अपने पास कितना धन है, किसी के काम आये तो अच्छा है। न जाने कब मौत आ जाय और सब यहीं पड़ा रह जाय ! जितना अपने हाथ से पुण्य कर्म हो जाये अच्छा है।"

सेठ बहुत प्रसन्न हुआ कि पहले नौकरों को कुछ देते तो लड़ पड़ती थी पर अब कहती है कि 'मैं खुद दूँगी।' सास दूसरों को वस्तुएँ देने लगी तो यह देख के दूसरी बहुएँ भी देने लगीं। नौकर भी खुश हो के मन लगा के काम करने लगे और आस-पड़ोस में भी खुशहाली छा गयी।

'गीता' में आता हैः

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।।

'श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, दूसरे मनुष्य उसी के अनुसार आचरण करते हैं।'

छोटी बहू ने जो आचरण किया उससे उसके घर का तो सुधार हुआ ही, साथ में पड़ोस पर भी अच्छा असर पड़ा, उनके घर में भी सुधर गये। देने के भाव से आपस में प्रेम-भाईचारा बढ़ गया। इस तरह बहू को सत्संग से मिली सूझबूझ ने उसके घर के साथ अनेक घरों को खुशहाल कर दिया !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

परलोक के भोजन का स्वाद

एक सेठ ने अन्नसत्र खोल रखा था। उनमें दान की भावना तो कम थी पर समाज उन्हें दानवीर समझकर उनकी प्रशंसा करे यह भावना मुख्य थी। उनके प्रशंसक भी कम नहीं थे। थोक का व्यापार था उनका। वर्ष के अंत में अन्न के कोठारों में जो सड़ा गला अन्न बिकने से बच जाता था, वह अन्नसत्र के लिए भेज दिया जाता था। प्रायः सड़ी ज्वार की रोटी ही सेठ के अन्नसत्र में भूखों को प्राप्त होती थी।

सेठ के पुत्र का विवाह हुआ। पुत्रवधू घर आयी। वह बड़ी सुशील, धर्मज्ञ और विचारशील थी। उसे जब पता चला कि उसके ससुर द्वारा खोले गये अन्नसत्र में सड़ी ज्वार की रोटी दी जाती है तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने भोजन बनाने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। पहले ही दिन उसने अन्नसत्र से सड़ी ज्वार का आटा मँगवाकर एक रोटी बनायी और सेठ जब भोजन करने बैठे तो उनकी थाली में भोजन के साथ वह रोटी भी परोस दी। काली, मोटी रोटी देखकर कौतुहलवश सेठ ने पहला ग्रास उसी रोटी का मुख में डाला। ग्रास मुँह में जाते ही वे थू-थू करने लगे और थूकते हुए बोलेः "बेटी ! घर में आटा तो बहुत है। यह तूने रोटी बनाने के लिए सड़ी ज्वार का आटा कहाँ से मँगाया ?"

पुत्रवधू बोलीः "पिता जी ! यह आटा परलोक से मँगाया है।"

ससुर बोलेः "बेटी ! मैं कुछ समझा नहीं।"

"पिता जी ! जो दान पुण्य हमने पिछले जन्म में किया वही कमाई अब खा रहे हैं और जो हम इस जन्म में करेंगे वही हमें परलोक में मिलेगा। हमारे अन्नसत्र में इसी आटे की रोटी गरीबों को दी जाती है। परलोक में केवल इसी आटे की रोटी पर रहना है। इसलिए मैंने सोचा कि अभी से हमें इसे खाने का अभ्यास हो जाय तो वहाँ कष्ट कम होगा।"

सेठ को अपनी गलती का एहसास हुआ। उन्होंने अपनी पुत्रवधू से क्षमा माँगी और अन्नसत्र का सड़ा आटा उसी दिन फिँकवा दिया। तब से अन्नसत्र से गरीबों, भूखों को अच्छे आटे की रोटी मिलने लगी।

आप दान तो करो लेकिन दान ऐसा हो कि जिससे दूसरे का मंगल-ही-मंगल हो। जितना आप मंगल की भावना से दान करते हो उतना दान लेने वाले का भला होता ही है, साथ में आपका भी इहलोक और परलोक सुधर जाता है। दान करते समय यह भावना नहीं होनी चाहिए कि लोग मेरी प्रशंसा करें, वाहवाही करें। दान इतना गुप्त हो कि देते समय आपके दूसरे हाथ को भी पता न चले।

रहीम एक नवाब थे। वे प्रतिदिन दान किया करते थे। उनका दान देने का ढंग अनोखा था। वे रूपये पैसों की ढेरी लगवा लेते थे और आँखें नीची करके उस ढेर में से मुट्ठी भर-भरकर याचकों को देते जाते थे। एक दिन संत तुलसीदासजी भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि एक याचक दो-तीन बार ले चुका है परंतु रहीम फिर भी उसे दे रहे हैं ! यह दृश्य देखकर तुलसीदास जी ने पूछाः

सीखे कहाँ नवाबजू देनी ऐसी देन ?
ज्यों ज्यों कर ऊँचे चढ़े त्यों त्यों नीचे नैन।।

तब रहीम ने बड़ी नम्रता से उत्तर दियाः

देने हारा और है, जो देता दिन रैन।
लोग भरम हम पै करें, या विधि नीचे नैन।।

असल में दाता तो कोई दूसरा है, जो दिन-रात दे रहा है, हम पर व्यर्थ ही भ्रम होता है कि हम दाता हैं, इसीलिए आँखें झुक जाती हैं।

कितनी ऊँची दृष्टि है ! कितना पवित्र दान है ! दान श्रद्धा, प्रेम, सहानुभूति एवं नम्रतापूर्वक दो, कुढ़कर, जलकर, खीजकर मत दो। अहं सजाने की गलती नहीं करो, अहं को विसर्जित करके विशेष नम्रता से सामने वाले के अंतरात्मा का आशीष पाओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पिता का अपमान, टी.बी. का मेहमान

(पूज्य बापू जी के सत्संग-प्रवचन से)

जो माता-पिता और गुरु की अवज्ञा करता है, उसको किसी-न-किसी जन्म में उसका फल भोगना ही पड़ता है। संत कबीर जी कहते हैं-

कबीरा वे नर अंध हैं,
हरि को कहते और, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।

जैसे गुरु का ठुकराया हुआ कहीं का नहीं रहता, ऐसे माता-पिता के अपराधी को भी चुकाना पड़ता है।

बंगाल के फरीदपुर जिले का जितेन्द्रनाथ दास वर्मन नामक एक युवक टी.बी. (राज्यक्षमा) की बीमारी से इतना तो बुरी तरह घिर गया कि सारे इलाज व्यर्थ हो गये। कुलगुरु ने कहा कि "यह रोग इस जन्म का नहीं है, पूर्वजन्म के किसी पाप का फल है। तुम भगवान तारकेश्वर की पूजा करो, वे तुम्हारी कुछ मदद करेंगे।"

उस युवक ने अपने कुलगुरु के आदेशानुसार भगवान श्री तारकेश्वर जी के मंदिर में पूजा-प्रार्थना प्रारम्भ कर दी। कुछ ही दिनों के बाद तारकेश्वर भगवान उसके स्वप्न में आये और कहाः "तूने पिछले जन्म में अपने पिता की अवज्ञा की थी, उनका अपमान किया था, उसी का फल है कि तू टी.बी. रोग से पीड़ित है और कोई इलाज काम नहीं कर रहा है। अब इस समय तेरा वह पूर्वजन्म का बाप फरीदपुर जिले के बड़े डॉक्टर श्री सत्यरंजन घोष के नाम से प्रसिद्ध है। तुम यदि उनकी चरणरज को ताबीज में मढ़ाकर धारण कर सको और प्रतिदिन उनका चरणोदक ले सको तथा वे संतुष्ट होकर तुम्हें क्षमा कर दें तो तुम ठीक हो सकते हो, इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

युवक ने स्वप्न की सारी बात अपने कुलगुरु को बतायी। कुलगुरु ने कहा कि "यह तारकेश्वर भगवान की कृपा है कि तुझे नामसहित पता भी बता दिया। " वह युवक डॉक्टर साहब के पास गया। स्वप्न की बात बतायी और बोलाः "आप पिछले जन्म के मेरे पिता हो। मैंने आपका अपमान किया था, आपकी अवज्ञा की थी जिसके कारण मुझे टी.बी. रोग हो गया है। अब आप मुझे सेवा का अवसर दो।"

पूर्वजन्म का पिता अभी डॉक्टर था। वह जानता था कि यह संक्रामक रोग। उसने जल्दी हाँ नहीं भरी। बोलाः "तू पिछले जन्म का बेटा होगा तो होगा लेकिन इस जन्म में मैं तुझे साथ में रखूँ और कहीं मुझे टी.बी. हो जाय तो ? तू अभी अपने घर जा। तुझे नीरोग करने के लिए मैं कैसे और क्या सहयोग दूँ, इसके लिए मैं मेरे गुरुदेव धनंजयदास व्रज-विदेही से पत्र-व्यवहार करके मार्गदर्शन लूँगा फिर तुझे समाचार भेजूँगा।"

डॉक्टर सत्यरंजन घोष ने अपने गुरुदेव को सारा विवरण लिख भेजा। गुरुदेव ने कहाः "उसको घर में रखना तो खतरे से खाली नहीं, पड़ोस में कहीं मकान लेकर दो फिर भी उसके आने-जाने से गड़बड़ हो सकती है। उत्तम तरीका तो यह है कि उस युवक जितेन्द्रनाथ दास को अपना छायाचित्र दे दो और कह दो कि तुम अपने घर में ही रहकर इस फोटो को साक्षात् अपना पिता मानकर सेवा-पूजा करो और चरणामृत लिया करो। कभी मौका मिलेगा तो मैं तुम्हें अपनी चरण धूलि दे दूँगा, चरणामृत भी दे दूँगा। हिम्मत करो, तुम ठीक हो जाओगे।"

उस डॉक्टर ने अपने गुरुदेव के बताये अनुसार टी.बी. से पीड़ित उस युवक को पत्र लिखकर भेज दिया। पत्र में लिखे अनुसार उस युवक ने छायाचित्र मँगवाकर पूजा प्रारम्भ कर दी। ज्यों-ज्यों पूजा करता गया, त्यों-त्यों उसका रोग मिटता गया। समय पाक पिछले जन्म का पिता, जो अभी डॉक्टर था, उसने अपना चरणोदक तथा चरणरज दे दी और बोलाः "मैंने तुझे

माफ कर दिया।" वह युवक उसी समय ठीक हो गया। डॉक्टर ने परीक्षण करके देखा तो पाया कि अब उसके फेफड़ों में कोई दोष नहीं है। वह एक दिन डॉक्टर साहब के पास रहा, पुनः उनका चरणोदक पीकर तथा चरणरज लेकर वापस चला गया। इसलिए कभी भी माता-पिता से ऐसा व्यवहार न करें कि उनको दुःखी होना पड़े। लेकिन जो भगवान के रास्ते जाते हैं उन्हें यह दोष नहीं लगता।

हमारे ऋषियों ने तो माता-पिता को देव कहकर पुकारा हैः

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।

एक बात और, मेरे पिताजी अंतिम समय में अर्थात् संसार से विदा लेते समय मेरी माँ के आगे हाथ जोड़कर बोलेः "कभी मैंने तुझको कुछ भला-बुरा कह दिया होगा, कभी हाथ में उठ गया होगा, उसके लिए तू मुझे माफ कर देगी तो ठीक होगा, नहीं तो मुझे फिर भोगना पड़ेगा। किसी जन्म में आकर तेरी डाँट-फटकार और पिटाई मुझे सहन करनी पड़ेगी।"

मेरी माँ ने कहाः "अच्छा तो मुझसे भी तो कोई गलती हुई होगी, आप माफ कर दो।"

बोलेः "हाँ-हाँ, मैंने माफ कर दिया।"

आप भी मरो तो जरा यह अक्ल लेकर मरना। अब मरते समय याद रहे-न-रहे, अभी साल में एक बार आपस में एक दूसरे से माफ करा लिया करो। पति पत्नी, भाई-भाई, मित्र-मित्र लेखा चुकता करा लिया करो, जिससे दुबारा कर्मबंधन में पड़कर आना न पड़े। **गहना कर्मणो गतिः।** कर्म की गति बड़ी गहन है।

न धन साथ चलेगा, न सत्ता साथ चलेगी, न चालाकी साथ चलेगी, साथ चलेगा धर्म, साथ चलेगा सत्कर्म, साथ चलेगा तुम्हारा आत्मा-परमात्मा। उसकी प्रसन्नता पाने के लिए करोड़ काम छोड़कर सत्संग कर ले, गुरु की शरण ले ले।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

केवल हरिभजन को छोड़कर....

सरोज अपनी ही धुन में न जाने क्या-क्या सोचती हुई मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी। अचानक उसे लगा कि कोई उसे पुकार रहा है। उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसकी सत्संगी बहन कांता उसे बुला रही थी। वह रूक गयी। कांता उसके समीप आकर बोलीः "बहन ! काफी दिनों से तुम सत्संग में नहीं आ रही हो। क्या कहीं बाहर गयी थी ?"

सरोज बोलीः "क्या बताऊँ बहन ! पिछले मंगलवार से बुखार छोड़ने का नाम ही नहीं लेता है और हमारा नौकर रामू गाँव हुआ है। अब घर के सारे काम भी मुझे ही करने पड़ते हैं। सुबह बच्चों को नाश्ता कराके तैयार कर स्कूल भेजती हूँ, उसके बाद नौ बजे ये जाते हैं। घर की सफाई, बर्तन, कपड़े आदि धोकर अभी कमर सीधी करने लगती हूँ कि स्कूल से बच्चे आ जाते

हैं। फिर उन्हें खाना खिलाना, होमवर्क (गृहकार्य) करवाना....। बस, ऐसा करते-करते कब दिन बीत जाता है पता ही नहीं चलता। रात को फिर वही खाना बनाना, खाना खिलाना.... करते-करते 10 बजे जाकर इस गाड़ी को आराम मिलता है। क्या बताऊँ बहन ! यह मनहूस डेढ़ सप्ताह तो ऐसा बीता कि कुछ पूछो ही नहीं !"

सरोज की बात सुनकर कांता कुछ गम्भीर-सी हो गयी और बोलीः "हाँ बहन ! यह गृहस्थी का झंझट ही ऐसा है, न करते ही बनता है और न छोड़ते ही बनता है। परंतु बहन ! इसमें हमारी भी कुछ गलती है। गृहस्थी में भी बड़े-बड़े भक्त रहते हैं। उनके भी बाल-बच्चे होते हैं, उनकी भी रिश्तेदारियाँ होती हैं, इतना सब होने पर भी वे भगवद् भजन को ज्यादा महत्त्व देते हैं। एक हम लोग हैं कि दिन-रात घर के झंझटों में ही फँसे रहते हैं और जब कभी जरा-सी फुर्सत मिलती है तब हमारा मूड नहीं होता भजन करने का। अब तू अपना ही देख, तेरा नौकर नहीं था, तुझे बुखार भी था, तब भी तूने सारे काम-धंधे किये, केवल हरिभजन को छोड़कर !"

दोनों बातचीत करती-करती मंदिर के दरवाजे तक पहुँच गयीं और भगवान श्री राधा-माधव को प्रणाम कर सत्संग-भवन में चली गयीं। सत्संग-समाप्त होने पर सभी सत्संगी खुशी-खुशी अपने-अपने घरों को चल दिये परतुं सरोज के कानों में कांता की वही बात गूँज रही थीं और खासकर वह अंतिम वाक्यः'... ... केवल हरिभजन को छोड़कर !'

वह सोचने लगी, 'हाँ, बात तो सही है। वास्तव में इन बीमारी के दिनों में मैंने घर का कौन-सा काम नहीं किया ? सब कुछ ही तो किया, केवल हरिभजन को छोड़कर !'

भक्त सूरदास जी के वचन उसके कानों में गूँज रहे थेः

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमक हरामी।।

यह मानव-तन हरिभजन के लिए मिला है लेकिन मनुष्य अपना सारा कीमती समय व्यर्थ के क्रियाकलापों, व्यर्थ की चर्चाओं में लगा देता है और हरिभजन के लिए उसके पास समय ही नहीं बचता। जिनके लिए पूरा जीवन खपा देता है, अंत समय उनमें से कोई भी साथ नहीं आता और मानव रीता चला जाता है। हरिभजन का हीरा कमाया नहीं, कंकड़ पत्थर चुग रीता चला मानव... कैसी विडम्बना है !

इसलिए शास्त्रों में आता हैः

शतं विहाय.... कोटि त्यक्तवा हरिभजेत।

'सौ काम छोड़कर समय से भोजन कर लो, हजार काम छोड़कर स्नान कर लो, लाख काम छोड़कर दान-पुण्य कर लो और करोड़ काम छोड़कर परमात्मा की प्राप्ति में लग जाओ।'

सत्संग महान पुण्यदायी है। मनुष्य जन्म की सार्थकता किसमें है, यह विवेक सत्संग से ही मिलता है।

बिनु सत्संग बिबेक न होई।

राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

अतः सत्संगरूपी अमृत का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। भले करोड़ों काम छोड़ने पड़ें, सत्संग में तो अवश्य ही जाना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

रुद्रो मुण्डधरो भुजंगसहितो गौरी तु सद्भूषणा
स्कन्दः शम्भुसुतः षडाननयुतस्तुण्डी च लम्बोदरः ।
सिंहक्रेलिममूषकं च वृषभस्तेषां निजं वाहन-
मित्थं शम्भुगृहे विभिन्नमतिषु चैक्यं सदा वर्तते ।।

भगवान शंकर मुंडमाला एवं सर्प धारण किये हुए रहते हैं और पार्वतीजी सुंदर-सुंदर आभूषण धारण किये हुए रहती हैं। शंकरजी के पुत्र कार्तिकेय छः मुखवाले तथा गणेशजी लम्बी सूँड़ व बड़े पेटवाले हैं। भगवान शंकर आदि के अपने-अपने वाहन - बैल, सिंह, मोर और मूषक भी आपस में एक-एक का भक्षण करनेवाले हैं। ऐसा होने पर भी भगवान शंकर के विभिन्न (परस्पर विरुद्ध) स्वभाववाले परिवार में सदैव एकता रहती है।

(इसी प्रकार गृहस्थ में विभिन्न स्वभाववालों के साथ अपने अभिमान व सुख-भोग का त्याग करके दूसरों के हित और सुख का भाव रखते हुए आपस में प्रेमपूर्वक एकता रहनी चाहिए।)